# मानव मन्दिर

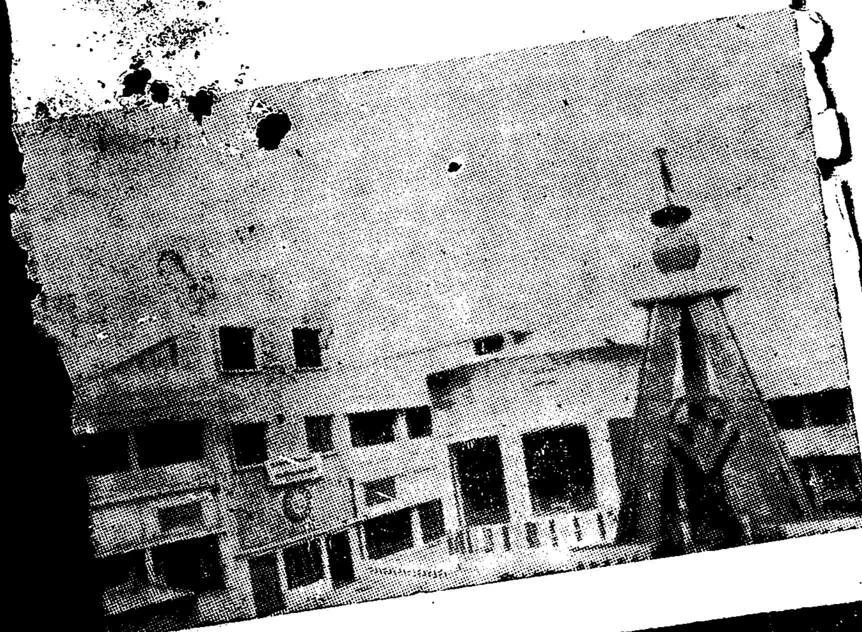

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

द्वारा अमूल्य भेंट

परम सन्त परम दयाल फकीर ... जी मह

## FORM

(See Rule 8)

| | |
|---|---|
| Place of Publication | Hoshiarpur. |
| Date of Publication | 10th of every month |
| Periodicity of publication | Monthly |
| Printer's Name | Prem Prakash Sharma |
| Nationality | Indian |
| Address | Manavata Mandir, Hoshiarpur. |
| Editor's Name | Prem Prakash Sharma |
| Nationality | Indian |
| Address | Manavata Mandir, Sutehti Road Hoshiarpur. |
| Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total | Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur. |

I. Prem Parkash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 — Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Praksh Sharma at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग
27-2-94 को 8 बजे होगा ।

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand ji Maharaj

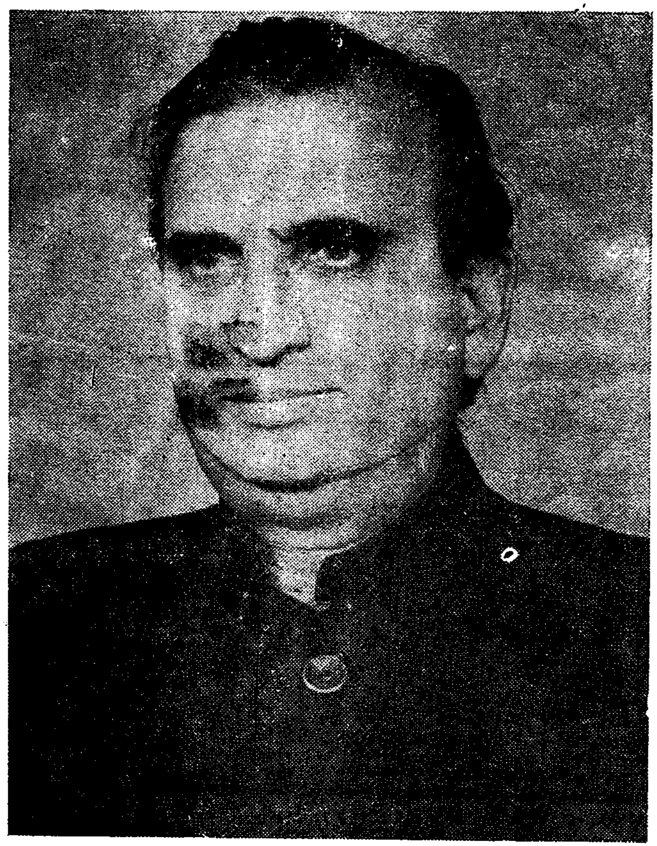

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma ji Maharaj

मासिक-

# मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 20 | बीरबार 10 फरवरी, 1994 | संख्या 10

# मूर्ति पूजा रहस्य

## सत्यता का सत्य मार्ग

## दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज

## मूर्ति की पूजा

1) सत्यता की नींव मूर्ति पूजा पर है। यदि मूर्ति पूजा के नियम को धर्म से पृथक कर दिया जावे तो वह धर्म या तो निर्जीव ठठरी की भांति निकम्मा बन जाता है अथवा अति भयानक और दुखदाई हो जाता है। इसी कारण सन्सार के सर्वप्रथम बड़े पन्थ हिन्दू धर्म ने इसको सबसे अधिक आवश्यक माना और फिर उसी के रूपान्तर दूसरी शाखा संसार के सबसे अधिक शक्तिशाली पंथ बुद्ध धर्म ने उसे अपनी शिक्षा का केन्द्र बनाया।

2) मूर्ति क्या वस्तु है? सर्वप्रथम इस पर भली भांति

विचार करो। तब उसके औचित्य अथवा अनौचित्य के सम्बन्ध में जिह्वा खोलो। बिना समझे-बूझे कुछ न कहो, नहीं तो अपनी हानि तो कर ही बैठोगे प्रत्युत तुम्हारी अनसमझी से अन्यों की भी बहुत हानि होगी।

'मूर्ति' संस्कृत शब्द 'मूर्छ' से निकला है, जिसके अर्थ हैं 'बेहोश होना', 'होश खो देना' और 'होश खो बैठना'। 'मूर्ति' शब्द से अभिप्राय केवल इतना ही है। यह शाब्दिक अर्थ है। अब तुम इसके असली अर्थ समझो। ईश्वर एक विस्तृत तत्व तथा सर्व व्यापक है। न जिसको वैदिक ऋषियों ने कभी देखा और न तुम देखोगे। परन्तु एक विशेष विचार को देहधारी बनाकर जब तुम उसकी मानसिक मूर्ति मन में स्थापित कर लेते हो तो उसे देखकर बेहोश अथवा समाधिस्थ हो जाते हो। यही समाधि अवस्था धर्म का मूल कारण है। मिट्टी तो मिट्टी ही है। उससे तुम अपनी आवश्यकतानुसार बर्तन भांडे बनाते हो। इसी प्रकार सत्यता का सार तो केवल सिद्धान्त और तत्व ही है। तुम अपने मस्तिष्क और विचार से उसे रूप देकर अपना काम बनाते हो। धर्म तुम को इसी प्रकार का मूर्ति निर्माता और मूर्ति पूजक बनाना चाहता है। तुम इस प्रकार की मूर्ति बनाकर उसी के ध्यान में लीन हो जाओ, अपने आपको भूल जाओ और तुम में न केवल शक्ति आयेगी, अपितु उस मूर्ति पूजा के आशीर्वाद से तुम अपने साथ लाखों का भला कर सकोगे और यदि केवल 'ईश्वर ईश्वर' करते रहते हो तो तुम्हारी दशा उस कुम्हार जैसी होगी जो रात दिन

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

मिट्टी मिट्टी चिल्लाता है परन्तु यह नहीं होता कि मिट्टी लेकर आवश्यकतानुसार बर्तन भांडे बनाकर औरों की भलाई की अवस्था उत्पन्न करे। कहो कौन सी बात स्वीकार है ?

(3) मूर्ति दो प्रकार की हुआ करती हैं---मानसिक और प्राकृतिक अथवा सूक्ष्म और स्थूल। अल्प बुद्धि वाले मिट्टी की मूर्ति गढ़कर उसी में मन को ऐसा लगा देते हैं कि अपनी बुद्धि व सोच-समझ को तल्लीन कर देते हैं। बुद्धिमान मनुष्य अपने मन के भीतर ईश्वर तत्व की मूर्ति गढ़कर उसकी सूक्ष्मता में ऐसे बेसुध हो जाते हैं कि लोक परलोक का विचार भूल जाते हैं। अहंकार का भूलना ही धर्म का उद्देश्य है। इसी के पर्दे में जब मन बहुत एकाग्र हो जाता है तब परम तत्व दृष्टिगोचर हो जाता है। यही तत्व निर्वाण है।

4) यदि मूर्ति न बनाओगे और अभ्यासी न होओगे तो केवल विद्वान अथवा ज्ञानी होने से तुम्हारा काम दो कौड़ी का रहेगा। ज्ञान बिना अभ्यास के शक्ति नही अपितु निर्बलता है। शक्ति उस ज्ञान में होती है जो अभ्यास और कार्य के द्वारा प्रकट होती है।

(5) शक्ति रोक रखने में है व्यय करने में नहीं है। यही योग का साधन है।

(6) 'ईश्वर तत्व है' केवल इतना जान लेने से तुम्हारा

काम क्या निकला ? यदि धर्म ने केवल वाचक ज्ञान दिया और साधना से वञ्चित रखा तो ऐसा धर्म निर्जीव ज्ञान है जिसकी सूखी हड्डी पर केवल वाचक ज्ञानी लड़ते रहते हैं। कमान और तीर बनाकर चलाना सीखो तब शिकार मार सकोगे। अन्यथा कब सम्भव है ?

(7) मूर्ति बनाओ। प्रथम इसे मूर्ति को 'सत' समझो। फिर सबसे समझ-बूझ लेकर सम्बन्ध पैदा करो। यह उसका 'चित' भाग है और उससे सम्बन्ध बनाये रखो उसमें लगे रहो यह उसका आनन्द भाग है।

(8) यही कार्य प्रकृति स्वयं प्रत्येक देश, काल और वस्तु में करती रहती है। तुम भी समझ-बूझ लेकर बुद्धिमता, शीघ्रता और परिश्रम से करते चलो और काम बना बनाया तैयार है। नहीं तो यदि कुत्तों की भाँति भूंकते हो तो अपना भेजा खपाओ। कोई क्या करे ?

कुलेखक लड़का लिखने के अभ्यास से शीघ्र सुलेखक बन जाता है। इसी प्रकार ऐसी मूर्ति पूजा से तुम बुद्धिमान, ज्ञानवान, सुहृदय और दयालु स्वभाव बनते चलोगे क्योंकि धर्म तुमको केवल प्रेम से मूर्ति बनाकर उससे मन लगाने का आदेश देता है। ऐसे अभ्यास ही से तुम धर्मात्मा बन सकते हो। अन्य रीति से असम्भव है।

(10) लड़का मिट्टी का पुतला बना रहा है। इस भांति उसमें लगा हुआ है कि मन की सारी शक्तियां

स्वयंमेव उसकी नन्हीं सूरत पर प्रतिबिम्बित हो रही हैं। वह प्रसन्न है। अचिन्त है। एक ओर लगा हुआ है। यही तुम्हारी भी दशा होगी। तुम जितना अपने भीतर ईश्वर की मूर्ति का दर्शन करोगे, सत्यता, श्रद्धा, प्रेम और भक्ति से भर जाओगे।

(11) मूर्ति बनाने में मन की शक्ति उभरती है। नवीन बल आता है। मन दिन प्रतिदिन सुन्दर होता जाता है। निर्भयता की यह दशा हो जाती है कि उसे और किसी की उपस्थिति का ध्यान ही नहीं होता। फिर वह डरेगा भी तो किससे डरेगा।

(12) मूर्ति के अनेक रूप हैं। देखो मैं अपने लेखन की कैसी सुन्दर मूर्ति तुमको दिखाया करता हूं। दूसरा भाषण की मूर्ति बनाता है। तीसरा विचार की, इत्यादि इत्यादि। प्रथम कोई एक मूर्ति बनाना सीखो तब इस नियम का तुमको पता मिले।

(13) तुम बोलकर, लिखकर, सोचकर दूसरों के भीतर नव जीवन संचार कर देते हो। इसी प्रकार ईश्वर की बाहर की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती और वह मूर्ति जीती-जागती हुई शक्ति की खान प्रमाणित होती है। कैसे समझायें? करो, तब तुम समझोगे, वैसे नहीं। पहले यह मूर्ति

कठिनता से बनती है। कभी बिगड़ी कभी बनी। कभी फिसल कर टूट गई। धीरे-धीरे अभ्यास से जब वह ठीक हो जाती है और प्राण-प्रतिष्ठा का आसन प्राप्त कर लेती है। तब उससे तुमको विशेष प्रकार का जीवन मिलता है। यही ईश्वर भक्ति है।

(14) मूर्खो! जब खाने-पीने से मनुष्य की हड्डी, रक्त, मज्जा, वीर्य सब ही बनता है तो इस मूर्ति के दर्शन के पान करने से तुम बलवान कैसे न बनोगे?

(15) ऐसे मूर्ति पूजा करने वाले संसार के किसी धर्म की जड़ नहीं खोदते प्रत्युत उनको पानी दे देकर जीवित कर देते हैं। तुम मुझसे कभी आकर पूछते तो मैं बता देता कि कैसे यह काम किया जाता है, यद्यपि मैं अपने जीवन व्यवहार से बराबर तुम को दिखाता चला आ रहा हूं। तुम ऐसे बनो, फिर तुम्हारे विचार उच्च होंगे, साहस बढ़ेगा, मस्तिष्क बढ़ेगा तथा लोक परलोक में बोल बाला होगा।

(16) मूर्ति पूजा करने वालों पर न हंसो। यह तुम से उत्तम हैं। वह पथ-गामी हैं, तुम पथ भ्रष्ट हो। वह बलवान हैं तुम निर्बल हो। यदि तुमने पढ़ा लिखा है तो धर्म का खंडन क्यों करते हो? उसके सिद्धान्त को समझो। यदि प्राचीन लेखन-शैली, विचार शैली और भाषण शैली से काम रक्खा तो तत्व को समझ जाओगे।

(17) कबीर दुनिया मसखरी,
गढ़ पूजे कर्त्तार ।
पत्थर पूजे हरि मिलें,
तो मैं पूजूं पहाड़ ।।
पाहन की गढ़ मूर्ति,
कर पूजे कर्त्तार ।
याहि भरोसे मत रहो,
बूड़ो काली धार ।।

ऐसी मूर्ति पूजा मैं भी पसन्द नहीं करता । जो पत्थर की मूर्ति को पत्थर समझ कर पूजता है वह अतिशय मूर्ख है । जो गुरु की मूर्ति को शरीर समझता है वह बोलता हुआ पशु है ।

(18) यदि थोड़े दिन मेरी संगत मिली होती तो मैं मूर्ति पूजा का सारतत्व सुगमता से तुम्हारे हृदयांगम करा देता । यह थोड़े से वाक्य भी कम नहीं हैं । सोचो तब काम बने । बिना सोचे समझे क्या हाथ आयेगा ।

## मूर्ति की बलिहारी

(1) यह मूर्ति सर्वप्रथम मन में बनती हैं । इसके बनाने की मिट्टी श्रद्धा है । पहले यह बीज रूपी होती है, फिर मानसिक रीति से बढ़ कर मानसिक बनती है । फिर वह प्राकृतिक रूप में प्रकट हो जाती है और मूर्ति बनाने वाला उसे देखकर विशेष

प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है।

2) इन्जीनियर के मस्तिष्क में बीज रूप मकान का नक्शा समाया। उसने उसे कागज पर उतारा। फिर सामान पैदा करके मिट्टी, ईंट और पत्थर का मकान बना लिया। यह तीन क्रम हैं।

3) बीज का नाम सुषुप्ति-मानसिक, कागजी नक्शा का नाम स्वप्न और प्राकृतिक मकान का नाम जाग्रत है। यह तीन अवस्थायें हैं।

(4) विचार का तेज जिस अवस्था में मस्तिष्क में प्रवेश कर के स्थित होता है वह सुषुप्ति ही की दशा है। यह बीज यों ही हमारे भीतर बिना जाने बूझे स्थित हो जाता है। सम्भव है देख कर, सुनकर, संगत से और दूसरों के प्रभाव से घटनाओं, अवस्थाओं और दशाओं के कारण से वह स्थित हो जाये। हम कह नहीं सकते कि यह विचार या कोई दूसरे प्रकार का भाव हमारे भीतर कैसे उत्पन्न हो गया। कुछ दिनों पृथ्वी के दाने की भांति मिट्टी के नीचे दबा पड़ा रहा। हमको सुधि नहीं थी। वह बेसुधी में आया। इसी बेसुधी और अचेतन्यता को सुषुप्ति कहते हैं। यह अज्ञान की अवस्था है। परन्तु यदि इस अज्ञान का अनुवाद तुम मूर्खता या अनसमझी करते हो तो लाख जन्म मेरी बात न समझ सकोगे। ज्ञान जिस प्रकार विद्या नहीं है वैसे ही अज्ञान, मूर्खता या अनसमझी नहीं है। इतना तो हम कह सक हैं इससे अधिक कहने में जिह्वा लड़खड़ाती

है और लेखनी कांपती है। अनुभव के बिना इसकी समझ का आना असम्भव है।

(5) यह तीन अवस्थायें हैं। यह ऊंचे से नीचे की ओर उतरती हैं जैसा इंजीनियर के दृष्टांत में बताया गया है।

(6) सुषुप्ति और स्वप्न : अर्थात् बीज रूप विचार और उस विचार को मन में सोचने से उसका रूप भली भाँति दिखाई नहीं देता। दिखाई तो तब देगा जब बाहर उसका रूप बनने लगे।

(7) बाहर प्राकृतिक मूर्ति का बनाना प्रारम्भ हुआ। अब बनाने वाला काँट-छांट करता हुआ उसकी गढ़त में लगा। कभी कोई भाग बनाता है कभी बिगाड़ता है और जब तक उसे अपनी मानसिक इच्छा के अनुसार सुन्दर नहीं बना लेता उसके चित्त को चैन नहीं आता। तस्वीर खींचने वाले, सुलेखक तथा मूर्ति निर्माता के भावों का निरीक्षण करो। तब यह गुप्त भेद तुम्हारी समझ में आवेगा।

(8) नवीनता प्रियता, अवस्था परिवर्तन की इच्छा, धनिकों के धन का लालच, दरिद्रों की बेचैनी, सुहृदय लोगों की परेशानी, साधुओं के साधन, योगियों के अभ्यास, असन्तोषियों के असन्तोष में वही भीतरी मानसिक भाव छुपा हुआ काम करता है। यदि हम में से किसी में तृप्ति होती तो हम

लाखों जन्म उन्नति न करते। जैसे थे वैसे ह पड़े रहते। परन्तु हमारा लक्ष उन्नति की ओर है। तृप्ति अपाहिजों का सिद्धान्त होगा। हमको जीवन की प्राकृतिक दशा में सन्तोष की आवश्यकता नहीं है। हां! सन्तोष का अर्थ मौज पर निर्भर रहना अथवा ईश्वर प्रणिधान का मार्ग है। हम स्वाभाविक-तथा नवीनताप्रिय, उन्नतिशील और परिवर्तनशील प्रकृति लेकर आए हैं और यह आशीर्वाद की वस्तु है।

[9] मन यदि चंचल है तो क्या हानि है? जब वह मूर्ति बनाने लगेगा स्वयंमेव एकाग्र हो जावेगा। पहले कर्म में तो लगो फिर अपने अनुभव से अनुमान करने लगो।

(10) किस वाटिका का माली वृक्षों को अथवा फूलों को एक अवस्था में रहने देता है। हम ने तो अपने जीवन में एक मनुष्य भी ऐसा नहीं देखा जो एक जैसी अवस्था का प्रेमी हो।

(11) यह मन की चंचलता ही है जो उत्तम अवस्था की इच्छा में सहस्त्रों प्रकार की बढ़त की शक्तियां प्राप्त कराती है। किस का मन यहां शान्त है? किसी का भी नहीं। कोई क्यों घबराये, क्यों दुखित हो? चलने दो। मन को खूब खूब चंचल होने दो। उसमें गति तो आवे।

'कि गन्ध सड़ायन्ध की आती है बन्द पानी में'

(12) लो जी! मूर्ति बन गई। चाहे वह कृष्ण की मूर्ति हो अथवा गुरु की मूर्ति हो अथवा ओंकार ब्रह्म की मूर्ति हो। हमने ही इसे बनाया। यदि हम कृष्ण के उपासक न होते तो राधारमन कृष्ण को जानता कौन? यदि हम चेले न कहलाते तो गुरु का प्रकट होना असम्भव था। यदि हम ब्रह्मवादी न होते तो ब्रह्म का नाम आज तक किसी ने भी न सुना होता। बेटे से बाप की, भक्त से भगवन्त की, सेवक से स्वामी की प्रजा से राजा को उत्पत्ति होती है। यह अन्योऽन्याश्रय बातें हैं। सोचो तो गुप्त भेद समझ में आए। बिना सोचे समझे किसी को क्या मिला है जो या तुमको मिलेगा।

[13] सत्यता के प्रेमिओ! मैं बिना लाग लपेट के और बिना रुकावट के सच्ची २ और खरी खरी बातें कहता हूं। जानना और समझना तुम्हारा काम है।

(14) प्राकृतिक मूर्ति बन गई। मूर्ति पूजा हो गई। गुरु की सेवा और संगत का बाहरी लाभ उठा लिया गया। अब कहो इस पर तुमको सन्तोष आयेगा? राम राम कहो। न ऐसा कभी हुआ न होने वाला है। आगे देखो क्या होता है अथवा होने वाला है।

(15) काल चक्र में ऊंच नीच है। चक्र घूम रहा है और वह बिना किसी प्रयोजन के नहीं है, क्योंकि काल सृष्टि में कोई कार्य निरर्थक अथवा बेफायदा नहीं है। यह मैंने प्रत्येक प्रकार से देख लिया। तुम उतरे। मूर्ति को सुषुप्ति के स्थान से उतार कर जाग्रत में ले आये। प्राकृतिक पूजा का दर्जा खत्म हो गया। जिस मूर्ति, जिस गुरु अथवा जिस

इष्ट के बाहरी प्रेम का दम भर लिया गया अब उसी को अपने भीतर खोजना है। बिना इस खोज के मन तुम्हें चैन न लेने देगा। इस कारण अब फिर ऊंचे चढ़ो।

(16) जाग्रत को छोड़ो। स्वप्न की अवस्था में आओ और वहाँ उसी मूर्ति का तेजमय रूप देखने का यत्न करो क्योंकि आदि में वह इसी स्थान से उतर कर नीचे आई थी। यह मूर्ति तुम्हारे मन ही से तो निकली थी, मन ही ने तो इसे बनाया था, यह मैंने तुमको पहले ही बता दिया था। क्या फिर कह दूं?

(17) स्वप्न क्या है? यह मन का स्थान है जहां मन अपना संसार आप रचता रहता है। यहां चढ़ कर तुमको प्रकाश मिलेगा। प्राकृतिक मूर्ति गई। अब ज्योतिर्मय मूर्ति से काम हुआ। हाय! ज्योति झलकती है और छिप जाती है। मूर्ति अपना रूप दिखाकर बार-बार दृष्टि से ओझल हो जाती है। कभी बिजली चमकती है, तारे खिलते हैं। श्याम कंज में कमलों के बीच प्रीतम छलबल के साथ आया और फिर छुप गया। कहो अभ्यास और योग के करने वालो! मैं सत्य कह रहा हूं अथवा असत्य बोलता हूं।

(18) यहां भी वही कांट-छांट, वही तोड़-फोड़ की बारी आई। ज्योतिर्मय मूर्ति बनने लगी। यदि साहस छोड़ बैठे तो कहीं के नहीं रहे। बराबर काम में डटे रहो और जाग्रत के प्राकृतिक जगत के अनभव

से लाभ उठा कर कटिबद्ध बने रहो और यह स्वप्नावस्था जाग्रत में परिणित हो जाएगी और तुमको गुरु का, इष्ट का और भगवन्त का भीतर दर्शन मिलेगा। जिस स्थान पर तुम्हारे भीतर यह अवस्था प्राप्त होती है उसका रूढ़ नाम त्रिकुटी, ओंकार स्थान और गुरु का स्थान है और जिस समय जिस स्थान पर अभ्यास आरम्भ किया गया था उसका नाम सहस्रार और सहस दल कंवल था। यह दोनों मन ही के स्थान हैं।

(19) लो, भीतर उस निर्मय मूर्ति का भी दर्शन हो गया क्या मन को शान्ति आ गई। राम राम! अभी तो बीज रूप स्थान में बीज मूर्ति का साक्षात्कार करना शेष है। चलो सुषुप्ति की मंजिल की ओर जहां से उसका आरम्भ हुआ था। यहां चढ़े। प्रथम अन्धकार दिखाई दिया। अचेतना, लीनता और निर्भरता हुई। इसे सुन्न समाधि, महा सुन्न, भंवर गुफा, मानसरोवर, जुलमात और ब्रह्मशिखर अथवा मेरुदंड का सिरा बोलते हैं। परन्तु मन अनुभवी हो चुका था। यहां उसने संभल कर उस बीज को भी देख लिया। सुषुप्ति पर विजय प्राप्त कर ली और वह समझ गया कि यह बीज है।

(20) इस स्थान पर भी तुष्टि नहीं होती और विचार उत्पन्न होता है कि इसका कारण क्या है. इसका आरम्भ किससे होता है? इस विचार ने गति

मन को आगे की ओर ढकेला। वह भंवर गुफा, सोहंग स्थान, एकोहम बहुस्यामि आदि नामों के स्थान पर जा पहुंचा। माया का रूप देखा और निज ज्ञान से लाभ उठाया।

[21] तुष्टि अथवा सन्तोष माया में नहीं है। शान्ति और निर्वाण अवस्था की वह बाधक है। इस हेतु आगे बढ़कर उसे सत् धाम, सत्पद, सत्यम नाम वाली अवस्था से सम्बन्ध पड़ा, जिस स्थान पर पहुंचने से स्वयंमेव ही उसे ज्ञान हो गया कि माया अपना अस्तित्व नहीं रखती। यह भ्रममात्र थी। उस का अस्तित्व सत्त के आधार पर था, वह मिथ्या ही थी। यहाँ आकर उसे शान्ति आ गई और यही उसके बेचैनी का कारण थी।

[22] यह सब उसी मूर्ति के कारण से हुआ। इस हेतु उसकी बलिहारी है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

# मेरी खोज और उसका परिणाम

## परमसन्त परमदयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

चेतनता आई। राम के मिलने की लालसा हुई। जीवन के निज अनुभवों ने, जो एक सच्चे शिष्य और सच्चे गुरु के नाते प्राप्त हुए, मुझे विवश किया कि मैं यह मानूं कि वह मालिक, सच्चा राम, जिसकी कि मैं खोज किया करता था, इस विराट और अव्याकृत अथवा ऊपर के सभी लोक लोकान्तरों में पूर्ण रूप से उपस्थित नहीं है और न ही वह पूर्ण रूप से हमारे शरीर, मन तथा आत्मस्वरूप शब्द और प्रकाश में है। वह ब्रह्माण्ड में तथा हमारे शरीर में उपस्थित है तो सही, परन्तु आंशिक रूप में। आप देखते हैं कि सूर्य एक स्थानीय है, परन्तु उसकी किरणें भिन्न भिन्न स्थानों पर विराजमान हैं, एकता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सूर्य प्रत्येक स्थान में है। किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं, वह तो एक ही स्थान पर है। इस बात का अनुभव मुझे गुरु की कृपा से तब हुआ जब मुझे यह मालूम हुआ कि मेरा रूप आप सत्संगियों के अन्तर में प्रगट होता है, आपकी सुरत को ऊपर खींच लेता है, आपके बिगड़े हुए काम बना

देता है। परन्तु मैं जानता हूं कि मैं कहीं नहीं आता हूं,न जाता हूं । तो यह निश्चित हो गया कि जिनके अन्तर में मेरा रूप प्रगट होता है,वह केवल एक विचार मात्र ही है,एक रेडिऐशन है, जो मुझको मानने वालों के अन्दर रहती हैं. वह फैलती है, परन्तु मैं तो वहां नहीं होता । इसी प्रकार परमतत्त्व तो एक आधार है, वह तो अपने स्थान में टिका हुआ है। यदि कोई अपने उस वास्तविक तथा सच्चे मालिक में लय हो जाना चाहता है, तो उसे अपनी सुरत को, शरीर, मन, प्रकाश और शब्द से अलग कर देना चाहिए। जो बाकी रह जाएगा,वह ही 'वह' है। चूंकि ऐसी अवस्था में, नाम रूप, रंग, रेखा, चेतनायें, बोधभान, आदि कुछ नहीं रहतीं, इसलिए इसे अगम अनामी और अमाया कहते हैं। यही बात राधास्वामी दयाल जी ने अपनी बाणी में कही है :

तब हंस शब्द, स्वामी यों बोले,
सुनो सुरत तुम मैं कहूं खोले।
जो तू पूछे भेद हमारा,
कहूं सभी अब कर विस्तारा ।।
मैं हूं अगम, अनामी अमाया,
रहूं मौज में अधर समाया।
मेरा भेद न कोई पावे।
मैं ही कहूं जो कहन में आवे ।।

जितने भी धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय है, वह मालिक को कुछ न कुछ मान कर हो उसकी पूजा करते हैं, अराधना करते हैं। जैसा कि मैंने आपको बताया है कि लोग मेरा रूप बना कर उसको पूजते हैं, उनकी मनोकामनायें पूरो हो जाती हैं, उनके बिगड़े हुए काम बन जाते हैं। परन्तु लोग

जिसकी भी मन में मूर्ति बना कर पूजते हैं, वह सब का सब खेल उनके अपने ही मन का होता है। अतः समस्त धर्म पन्थ या सम्प्रदाय, जो किसी न किसी इष्ट के पुजारी हैं वे सब के सब, अपने द्वारा ही उत्पन्न किए हुए, बनाए हुए खुदा ईश्वर या परमात्मा के ही पुजारी हैं। मेरी समझ में, इस संसार में यदि कोई अराधना या पूजा के योग्य अस्तित्व है, तो वह केवल मनुष्य ही है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर उसकी सुरत, उसकी जात, मालिके कुल की ही अंश है। अतः मानव की सेवा तथा मानव से प्रेम ही वास्तव में सच्ची पूजा, सच्ची अराधना है। जो मनुष्य इस अनाम गति में रहता है, उसकी संगति, उसकी आज्ञा का पालन, मानव को अपने वास्तविक देश में पहुंचा सकता है।

अब वह देश कौनसा है? वह देश वह है, जहां सुरत निरत होकर अपने अस्तित्व को खो देती है। मेरे जीवन के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव एक चेतन का बुलबुला है, जो परमतत्व, अनाम पद, अकाल पद में क्षोभ होने से, जब शब्द प्रगट होता है, तब पैदा होता है और शब्द के सहारे ही अशब्द होकर अपनी जात में लय हो जाता है। यहां इसका अपना नाम, रूप तथा 'है पना' नहीं रहता। यह मेरा निजि अनुभव है, जिसे मैं अपने लाखों में प्रकट करता रहता हूं। यही बात राधास्वामी दयाल जी ने भी कही है :

'सुनो सुरत तू अपना भेद,<br>
तुम हम में थी सदा अभेद।

काल कटी हम सेवा भारी,
सेवा बस होय कुछ न विचार ।
तुमको मांगा हमसे उसने,
सौंप दिया तुम्हें सेवा इस में ।।

काल क्या है ? गति का नाम है काल। तत्व में गति हुई, गति से शब्द उत्पन्न हुआ और शब्द की चेतना का नाम सुरत है। जिस समय मानवी सुरत, साधन करती हुई, शब्द द्वारा अशब्द गति में चली जाती है, तो वह अभेद है। जिस प्रकार पानी की धार में बिजली छिपी हुई है, परन्तु वह उत्पन्न तभी होती है जब पानी बलवान गति के द्वारा ही बहता है। ठीक इसी प्रकार सुरतें भी बनती बिगड़ती रहती हैं। यह क्रम अनादि काल से यूं ही चला आ रहा है। बुलबुले समुद्र मे उत्पन्न होते रहते हैं और टूट टूट कर फिर समुद्र मे लय होते रहते हैं।

मेरे हृदय में अनुभव के बाद राम से मिलने की लालसा धीरे धीरे समाप्त हो गई। सच्चा राम, वह अकाह, अगाध, अजर, अनामी है, जिससे कि हम निकले हैं और जिसमें ही हम समा जायेंगे। इस ज्ञान और अनुभव के बाद मैंने क्या समझा ? मैंने यह समझा कि हम संसार में रहते हुए भी, अपने घर जाने के लिए या राम से मिलने के लिए शरीर, मन और आत्मा, ब्रह्म, परब्रह्म या जितनी प्रकृति की शक्तियां ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, इन्द्रलोक, गन्धर्वलोक, आदि हैं, जो कि उस ज़ात की गति के कारण ही बनते और बिगड़ते हैं, उन सब से परे जाने के लिए अपने अन्तर में हो

सुरत-शब्द का अभ्यास करना चाहिए। जब तक मनुष्य संसार में है, उसका फ़र्ज़ है कि वह मानव से प्रेम करे, मानव से प्रेम करना ही उसका सच्चा धर्म है। इसी ही विचार से मैंने मानवता मन्दिर की नींव रखी है। मैं चाहता हूं कि मानव धर्मों और पन्थों के चक्कर में आने की अपेक्षा मानवता के धर्म को ही अपनाए। मानव को ही पूजा करे।

इस सन्तमत अथवा मानवता धर्म की नींव वर्षों पहले सन्त कबीर ने रखी थी। उस समय धर्मों के संकुचित दायरे को लेकर, हिन्दुओं और मुसलमानों में बहुत झगड़े हुआ करते थे। गुरु नानक के समय भी यही दशा थी। अतः गुरु नानक ने भी जीवन भर लोगों को इस संकुचित दायरे से ऊपर उठने की शिक्षा दी। 1857 के गदर का कोमल हृदय राधास्वामी दयाल जी महाराज पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने इस भेद भाव को मिटाने के लिए अपना जीवन लगा दिया। प्रत्येक महापुरुष पर भी बाहरी वातावरण का प्रभाव पड़ता है। स्वामी जी महाराज भी उस गदर से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वास्तविकता की खोज की और दुःखी जीवों को भवसागर से पार उतरने की विधि बताई। मैंने भी अपने जीवन के 70 वर्ष इस वास्तविकता की खोज में लगा दिए। मैं अपने अनुभव को आप सब और विशेषकर सन्तमत या सुरत-शब्द योग के साधकों से, अनुयायियों यह कहना चाहता हूं कि आप सब अपने अपने गुरुओं, धर्मों या पन्थों की प्रशंसाओं के पुल बांधना छोड़ दो। इस संकीर्ण दृष्टिकोण से मानवता के टुकड़े टुकड़े हो गए हैं और आगे और

भी होते जायेंगे। बजाय प्रशंसा के पुल बांधने के आप गुरु के उपदेशों का पालन करो, सच्चे धर्म की शिक्षा को समझो। जीवन में सच्चा मनुष्य बन कर मानव के साथ सहानुभूति करो। उनसे प्यार करो। पूरे विश्व के लोगों से तो आप प्यार कर नहीं सकते या दर्शा नहीं सकते, इसलिए सबसे पहले उनके साथ प्यार तथा सहानुभूति करो, जिनको कुदरत ने तुम्हारे साथ जोड़ दिया है, तुम्हारे सम्बन्धी, कुटुम्बी, इष्ट मित्र, स्वामी, सेवक इत्यादि। इसके पश्चात यदि धन और समय है तो मनुष्यमात्र की सेवा करो। यही सच्चा धर्म है।

यदि आप अपने निज घर जाना चाहते हो, अपने अस्तित्व को मिटाना चाहते हो, अभेद होना चाहते हो या अपनी मैं को मिटाना चाहते हो, तो अपने अन्तर में प्रवेश करके, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोधभावों के त्यागने का प्रयत्न करो। यह सुरत-शब्द योग के अभ्यास से ही सम्भव है। इधर उधर भटको मत, बहके मत फिरो। सुरत-शब्द योग का अभ्यास करो। यही उपनिषदों की शिक्षा है, यही सन्तों की शिक्षा है और यही गरुड़ पुराण की शिक्षा है।

जो कुछ मैंने अपने जीवन में अनुभव किया वह आपको बता रहा हूं। मेरी बात की गहराई को केवल वही जान सकेंगे, जो क्रियात्मक रूप से जीवन में परमशान्ति की प्राप्ति में लगे हुए हैं। उस स्थान का नाम राधास्वामी धाम है, उसी को ही अनामीधाम भी कहते हैं, जो हमारा आदि और

अन्त हैं :—

आया गुरु दरबार मैं,
मेरे सतगुरु स्वामी ।
बल पौरुष से हीन भया हूं,
बुद्धि का लाचार ॥ मैं मेरे ॥
ज्ञान भक्ति नहीं कुछ बन आवे,
कर्म का निपट गंवार ॥ मैं मेरे ॥
परमारथ स्वारथ दोऊ खोये,
भरम रहा संसार ॥ मैं मेरे ॥
कैसे करूं उपाय न सूझे,
दान धरम व्योवहार ॥ मैं मेरे ॥
कायर सम सब को तजि डारा,
कुल कुटुम्ब परिवार ॥ मैं मेरे ॥
घर नहीं चैन न बन में शान्ति,
घूमा बस्ती उजार ॥ मैं मेरे ॥

वह राधास्वामी धाम ईंटों या पत्थरों का बना हुआ नहीं है। न वह ज़िला बनारस में है, न दयाल बाग़ में न ब्यास में और न कहीं और। यह वह अवस्था है, जहां मानव की सुरत निथानी हों कर अपना 'मैं पना', अपनी समस्त शक्तियां: अपनी सारी बुद्धि, अपने सारे प्रयत्न छोड़ कर शरणागत हो जाती है। इस शरणागत अवस्था के बाद जो अवस्था हदारे अन्तर उत्पन्न में होती है। उस अवस्था का नाम राधास्वामी धाम है। तब तक मुझ में बल पौरुष था, जब तक मैं अपते यतन से, अपने सुमिरन, ध्यान, भजन से, धर्म कर्म से, साहस करके ठहराव लेता रहता था, मेरे निज अनुभव ने सिद्ध किया कि वे सब अवस्थायें चिरस्थायी रहने वाली

नहीं थीं। अन्तिम सोपान तो
जीवन में भली भांति दौड़ कर देख
यों समझ लो कि कर्म धर्म, योग, ज
भजन आदि के सहारे जीवन में
जब जब अन्तिम आयु अ
टूट गए केवल एक राधास्वामी का शहारा शेष रह गया। मैं स्वयं को उस परमतत्व, सर्वाधार, सच्चे सद्गुरु के सुपुर्द करता रहता हूं। प्रारब्ध कर्म, शरीर, मन और आत्मा में खेल खिलाते हैं। किन्तु ये खेल अब मुझे आकर्षित नहीं कर सकते। यह सब अस्थायी सिद्ध हुए हैं। अब तो कबीर साहब की बात याद रहती है :

"मरहम होय सो जानो साधो,
ऐसा देश हमारा।"

वह मरहमपना क्या है? वह है निज अनुभव। जब मानव पूर्णरूप से अपनी सुरत को उस मालिकेकुल, सर्वाधार के समर्पण कर देता है, तो उसका लोक तथा परलोक दोनों बन जाते हैं। मैं जिज्ञासुओं को सदा यही कहता रहता हूं कि जीवन के अनुभवों से लाभ उठाओ। दाता दयाल जी ने मुझे बहुत समझाया। मेरे नाम कई पुस्तकें लिख डालीं। किन्तु क्या उस समय मैं कुछ समझा? नहीं समझा। स्वयं दौड़ कर देखा अपनी बुद्धि का प्रयोग किया। अन्त में ही यह सोपान, जिसको राधास्वामी धाम, अनामीधाम, अकाल पद या परमशान्ति कहते हैं, उसका अनुभव किया। कब तक यह शरीर है, ज्ञात नहीं। किन्तु अब उपरामता आ गई है। किसी से मिलने मिलाने, वार्तालाप करने तथा किसी प्रकार की इच्छायें बाकी नहीं रह गई। इस अन्तिम

...ा में, संसार से उपराम होने के कारण जीवन का आनन्द भले ही न रहा हो, परन्तु अपने आपे तथा ज़ात का आनन्द और परम शान्ति है। जीवन का आनन्द लेने के लिए प्रेम, भक्ति, ज्ञान कर्म, योग मानव के सहायक होते हैं। इसलिए जन साधारण के लिए अपने कर्म भोग वश मैंने पुकार की कि 'मनुष्य बनो'। मेरा निजि मार्ग इस मानवता से ऊंचा है, जिसका अधिकारी करोड़ों में कोई बिरला व्यक्ति ही होता है।

मैं आया हूं मनुष्य बनाने,
मनुष्यपना है सुखदाई।
मानवता है सहज का साधन,
सहज में कैसी कठिनाई॥
बात 2 में तत्व सुझा दूं,
खेल खेल में दरसा दूं।
हंसी 2 में सार लखा दूं,
चुटकी बजा कर समझा दूं॥
नहीं लगाव लपेट कथन में,
सच्ची है बानी मेरी।
सुलझा दूं जड़ चेतन गून्थी,
युक्ति है जानी मेरी॥
मेरी संगत में जो आवे,
तीरथ राज स्नान करे।
काम अर्थ और धर्म मोक्ष के,
तत्वों की पहचान करे॥

सतगुरु ने जो मुझे बताया,
वही बताऊंगा तुमको ॥
राधास्वामी की करुणा से,
सन्त बनाऊंगा तुमको ॥

मैं प्रत्येक वस्तु को क्रियात्मक रूप से देखता चला आया हूं। सबसे महत्वपूर्ण बात जो स्वामी जी महाराज और हजूर महाराज जी ने बताई है वह है गुरु का महत्व। उनके अनुसार, पूरे गुरु के बिना काम नहीं चलता और पूरे गुरु की दया से मिलता क्या है? मिलता है भवसागर से छुटकारा तथा चौरासी से मुक्ति। संसार का भासना हमारे मन के कारण है। सुरत-शब्द का साधन करने से क्या हुआ? मन समाप्त हो गया। जब मन ही समाप्त हो गया तो फिर आवागमन, मुक्ति और बन्धन का झगड़ा ही कहाँ रहा? इस मन के समाप्त करने वाले कौन हैं? वह हैं आप सत्संगी, जिन्होंने मुझे गुरु माना मेरे रूप को उत्पन्न करके अपने बिगड़े हुए काम बना लिए। उनके अनुभवों को जब मैंने सुना तो मैं दंग रह गया। सोचा मैं तो कहीं गया नहीं तो विचार आया कि उनका काम उनका विश्वास ही कर गया। वह उनका अपना ही मन था। इस विचार ने मुझे मन से परे जाने में सहायता दी। आगे क्या है? सत् की नगरी या मेरा अपना अस्तित्व, तो फिर चौरासी के भ्रम से कौन छुटकारा दिलाता है? गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान। इसलिए इस संसार में गुरु की बहुत महिमा है वह भी उस गुरु की, जो स्वयं इस मन के चक्कर से निकला हुआ है। कबीर

साहब कहते हैं :

गुरु ज्ञान न पाया री सखी,
तेरी आयु विहानी ।

जब चेतना में आता हूं तो सोचता हूं कि अब मुझे गुरु का काम भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि अभी शरीर और मन में विद्यमान हूं काम करता हूं और शारीरिक तथा मानसिक जगत् को श्रेष्ठ बनाने के लिए आपसे 'मनुष्य बनो' की पुकार करता रहता हूं। चाहता हूं कि आप मानवता धर्म के नियमों को अपनाते हुए अपने शारीरिक, मानसिक, व्यवहारिक और सामाजिक जीवन के 'शिव संकल्पम अस्तु' के नियमानुसार श्रेष्ठ बना लें।

# सत्संग परमसन्त हजूर मानवदयाल डा० ईश्वर चन्द शर्मा जी महाराज

(बुलन्दशहर 18-2-1988)

## शब्द

किस मुख से तेरी महिमा गाऊं,
तू सत्तपुरुष अविनासी है
चेतन धन अमल विमल निर्मल,
सत्त सदन परम सुखरासी है ॥
कोई अगुन कहे, कोई सगुन कहे,
कोई निराकार साकार कहे ।
तू सब कुछ है और कुछ भी नहीं,
धुरपद धुरधाम निवासी है ॥
नहीं मन ने थाह कभी पाई,
नहीं बुद्धि में आई चतुराई ।
चित चिन्तन कैसे करे तेरा,
द्वैत अद्वैत प्रकाशी है ॥

मन बना बिहंगम मीन मकर,
मरकट बन कर कूदा अन्दर।
चींटी की चाल चला घट में,
कह उठा तू अगम उदासी है ॥
राधास्वामी रूप में प्रकट हुआ,
दर्शन देकर कृतार्थ किया।
निज शब्द से अपना भेद दिया,
घट अघट का सत्य निवासी है ॥

अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

राधास्वामी !

आज के छोटे से सत्संग के लिए दाता दयाल जी महाराज का जो उच्च कोटि का शब्द पढ़ा गया, उसमें बताया गया है कि जिस मालिक को ढूढ़ने के लिए लोग अनेक प्रकार के योगों को अपनाते हैं, अनेक प्रकार के कर्म-काण्ड करते हैं, वह मालिक आखिर है क्या ? दुनिया में बहुत से ऐसे धर्म हैं, जो कहते है कि जो कुछ उनकी किताबों में लिखा है बस वही सत्य है। अनुयायियों को चाहिए कि वे उसे खुदा का वचन मानकर उस पर चलते जायें, बहस नहीं करें। बाईबल में यह नहीं बताया गया कि ईश्वर का स्वरूप क्या है,आत्मा का स्वरूप क्या है। अधिकतर धर्म अन्धविश्वास पर ही आधारित हैं, और जिस मालिक की खोज है, उसका तो पता हीं नहीं कि वह है क्या। सनातन धर्म अन्धविश्वास पर आधारित नहीं है। इस धर्म की पहली खोज ही यहां से शुरू होती है कि परमतत्त्व,

मालिक, ईश्वर, कर्ता, सृष्टा है क्या, उसका स्वरूप क्या है या कैसा है। मानव का स्वरूप कैसा है और परमतत्व तथा मानव का आपस में क्या सम्बन्ध है ?

हमारे ऋषि, मुनि अन्तर में वर्षों ध्यान लगाने के बाद, खोजते-खोजते इस परिणाम पर पहुंचे कि मानव स्वयं ही मालिक का चित्र है, मालिक का नमूना है। बाईबल में भी यही लिखा है, 'Man is the image of God' आज के शब्द में मालिक के कई नाम बताए गए हैं, जैसे सत्तपुरुष, अवि-नाशी, सुखराशि, आदि-आदि। ये सभी नाम मालिक के किसी न किसी, उस लक्षण को बताते हैं जिसका कि अनुभव किया गया है :

जाकी रही भावना जैसी।
तिन प्रभु मूरत देखी वैसी॥

कुछ लोग कहते हैं कि मालिक निराकार है, कुछ कहते हैं कि वह साकार है : साकार का अर्थ है कि जिसको आँखों द्वारा देखा जा सके, जिसका आकार हो। जिसका आकार होता है, उसका रूप होता है, रंग होता है और नाम होता है। लोगों का कहना है कि जिसका रूप-रंग है, जिसको हमने नाम दे दिया, वह तो सीमित हो गया वह असीम कहां रहा ? परन्तु मालिक तो असीम है सीमित नहीं, फिर वह साकार कैसे हुआ ? इस तरह के तर्क चलते रहते हैं।

अक्षर क्या है ? वह है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो अपने आप में अविनाशी है। अविनाशी का वर्णन

नहीं किया जा सकता। वर्ण क्या है? जो लिखा जाता है वह वर्ण है। जब अक्षर का रूप बनाया जाता है, तो वह अक्षर वर्ण हो जाता है। अक्षर 'अ' अपने आप में अविनाशी है, इसलिए वह निराकार ही है। जिसका रूप होता हैं, आकार होता है, वह तो बदलता ही रहता है, किन्तु निराकार परिवर्तनशील नहीं होता, क्योंकि जिसका आकार नहीं, वह बदलेगा कैसे? अविनाशी जो बदलता नहीं, वह निराकार होता है और निराकार को समझना बहुत ही कठिन है। निराकार जब तक साकार नहीं होता, तब तक उसको समझना लोगों के लिए बहुत ही कठिन होता हैं, इसलिए मालिक जो निराकार है, गुप्त है,उसे समय समय पर लोगों की भलाई के लिए साकार होना या बनना पड़ता है। मालिक ने अपने आपको साकार किया। उसने अपने आपको प्रकाश और शब्द, अर्थात् रूप और नाम में प्रकट किया या साकार किया।

प्रकाश रूप है और शब्द नाम है। नाम और रूप मालिक की दो अभिव्यक्तियां हैं, दो रूप हैं। मालिक ने अपने आपको कैसे साकार किया? उसने अपने को निर्गुण से सगुण बना दिया। मालिक की जब इच्छा होती है, वह साकार हो जाता है और फिर निराकार हो जाता है। उसी ही मालिक ने हमें भी शरीर के अन्दर भेजा है। हम अपने आपको शरीर के अन्दर देखते हैं, अपने आपको मन में देखते हैं तथा आत्मा के आनन्द का अनुभव करते हैं। हमारा शरीर मन तथा आत्मा या सत्, चित् आनन्द में आने का कोई मकसद तो है! हां, हमारा इस पृथ्वी पर आने का विशेष मकसद है। न जाने लोग

इस चक्कर में क्यों पड़ते हैं तथा लड़ते-झगड़ते हैं कि मालिक निराकार है, मालिक साकार है, वह निर्गुण है, वह सगुण है। यदि आपको मालिक के स्वरूप का ही ज्ञान नहीं, पता नहीं, तो आप उसकी तलाश कैसे करोगे ?

मैंने आपके सामने मंगलाचरण रखा :

अखण्डमंडलाकारम् : मालिक का रूप गोल है, सारा ब्रह्माण्ड गोल है, सारी आकाशगंगायें गोल हैं, सब नक्षत्र गोल हैं, सूर्य चन्द्रमा तथा पृथ्वी गोल है. जब शक्ति जगत् में आती है, तो गोलाकार मण्डल बनाती चली जाती है और इन मण्डलों से अनेक मण्डल बनते हैं। मालिक का एक मण्डल हमारी आंखों को दिखाई देता है और वह मण्डल है उसके विराट् रूप में सारा जगत् (जिसको ब्रह्मा का जगत्) कहते हैं। दूसरा मण्डल है ब्रह्माण्डी मन जो विष्णु का है और दिखाई नहीं देता। तीसरा मण्डल है प्रकाश या शिव का। इन सभी मण्डलों को बनाने वाला मालिक अखण्ड है अविनाशी है. जो सब जगह मौजद है। जैसे लकड़ी को दियासलाई से जलाने से उसमें गर्मी आ जाती है, उसी प्रकार मनुष्य के कण-कण में उसी ही मालिक की ताकत है। जड़-चेतन तक में भी उसी ही मालिक की ताकत है, उसी ही मालिक की सुन्दरता है, उसी ही का प्रकाश है। जो गुरु, उस मालिक तक पहुंचने का रास्ता बता दे, या उस मालिक के दर्शन करा दे, ऐसे गुरु को कोटि-कोटि बार नमस्कार।

हां ! तो मैं आपको बाईबल की बात बता रहा था।

यदि आप बाईबल को शुरू से लेकर अन्त तक पढ़ें, आपको कहीं भी पढ़ने में नहीं आयेगा कि आत्मा का स्वरूप क्या है। परन्तु हमारे ऋषियों ने सैंकड़ों वर्षों तक तपस्या करने के बाद अपने अनुभव से बताया कि आत्मा क्या है और जिस मालिक को तुम ढूंढ़ रहे हो पहले यह तो जानो कि वह मालिक है क्या। उस मालिक की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसकी महिमा को गाया नहीं जा सकता। इसलिए आज के शब्द में दाता दयाल जी महाराज ने कहा है :

किस मुख से तेरी महिमा गाऊं,
तू सत्त पुरुष अविनासी है।'

महिमा तो असत् की यानि कि नाशवान चीज़ों की गाई जाती है। आप पहाड़ों की महिमा गा सकते है, नदियों की महिमा गाई जाती है, परन्तु इन सब चीज़ों का सार तो वही मालिक ही है, वही सत्तपुरुष है। उस सत्तपुरुष की महिमा वर्णन करने की हम में शक्ति ही कहाँ है, क्षमता ही कहाँ है ? अविनाशी की व्याख्या तो कोई बिरला सन्त ही कर सकता है। यद्यपि अविनाशी की पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती, तथापि उसको स्वीकार करने से इन्कार भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सारा जगत् जो चल रहा है वह किसी न किसी अविनाशी तत्व से ही तो निकला है।

"चेतन घन अमल, विमल, निर्मल सत् सदन परम सुखरासी है।" चेतना कहते हैं जानने की हालत को।

आँखों से देखना, कानों से सुनना, ज़ुबान से चखना, त्वचा से स्पर्श करना, नाक से सूंघना आदि सब चीज़ें चेतना के अन्तर्गत आती हैं। जाग्रत अवस्था में, हमें चेतना का अनुभव होता है। स्वप्न की अवस्था में, अर्द्धचेतना होती है। लेकिन जब हमारा ध्यान मन से निकलकर गहरी नींद आत्मा में चला जाता है, तो वहाँ स्वप्न वाला अर्द्धचेतना भी नहीं होती। क्या उस गहरी नींद के अन्दर चेतना की क्षमता नहीं है? मालिक न तो चेतन है, न अचेतन है, वह तो चेतनघन है। सूर्य की अग्नि लकड़ी में मौजूद है। उस लकड़ी को दियासलाई के जलाने से लकड़ी में गर्मी आ जाती है। गहरी नींद में आत्मा के अन्दर चेतना नहीं होती, लेकिन आनन्द का अनुभव तो होता है। आपकी आत्मा चेतनघन का नमूना है। आत्मा के अन्दर चेतना छुपी हुई है। जागते हुए आपको चेतना होती है, सुषुप्ति की अवस्था में चेतना नहीं होती, सुषुप्ति को अचेतन अवस्था भी कह सकते हैं, लेकिन उसके अन्दर भी चेतना छुपी हुई है। चेतना से अधिक महत्वपूर्ण चीज़ है चेतनघन, यानि कि चेतना से ओतप्रोत। आत्मा उसका नमूना है। मालिक जब मनुष्य के चोले में आता है, तो उसमें रूप, रस, गन्ध आदि होता है। इसलिए सन्तमत के अन्दर गुरु की पूजा होती है, अर्थात् शारीरिक पूजा होती है। गुरुमत या सन्तमत में पांच प्रकार की बाहरी भक्ति को माना जाता है :

1) देखना

2) सुनना

3) स्पर्श करना

4) सूंघना

5) चखना।

देखना : देखने का अर्थ है निहारना। गुरु की आँखों को टिकटिकी लगा कर देखने से आँखों के द्वार। गुरु को रेडिएशन आती है।

'स्वामी बैठक अद्भुती राधा निरखनहार'

इसलिए राधा बन कर स्वामी रूप गुरु को लगातार देखते रहो।

सुनना : कानों से गुरु की वाणी को सुनना।

स्पर्श : हाथों से गुरु के चरणों का स्पर्श करना।

सूंघना : गुरु द्वारा दिए गए फूलों को लगातार सूंघना। फूल सूंघने से गुरु का रेडिएशन आती है।

चखना : गुरु की दी गई प्रसादी को चखना।

यह पांच प्रकार की बाहरी भक्ति है और चार प्रकार की आन्तरिक भक्ति होती है, चित्, मन, बुद्धि, अहंकार। चित् में मालिक का चिन्तन करे मन से मनन करे और मनन करने के बाद उसी का ही ध्यान करे। बुद्धि से उस मालिक को समझने की कोशिश करे और अपने अहंकार को मालिक के चरणों में समर्पित कर दे यह पाँच प्रकार की अन्दरूनी भक्ति, नवधा भक्ति कहलाती है। मालिक अथवा

गुरु को 9 तरीकों से प्यार किया जा सकता है। नौ तरीकों से प्यार करना केवल भौतिक विषय नहीं है। वह स्पर्श किए जाने वाली चेतना का विषय नहीं है। वह चेतनघन है इसलिए वह देखा नहीं जा सकता, कानों से सुना नहीं जा सकता, उसका चित्त से चिन्तन भी नहीं किया जा सकता है, लेकिन वह है जरूर। जब मालिक मनुष्य के चोले में आता है और उस हस्ती से हमारा सम्पर्क होता है, तो हमें परम आनन्द व सुख की अनुभूति होती है। सद्गुरु के पास बैठने मात्र से ही आपको तसल्ली मिलती है, शान्ति मिलती है, आत्मिक सुख मिलता है, क्योंकि वह चेतन हस्ती, चेतनघन हैं।

चेतनघन, अमल, विमल, निर्मल, ये गुरु के लक्षण हैं। अमल का अर्थ क्या है ? अमल का अर्थ है मल से रहित होना। सद्गुरु जब मनुष्य के चोले में आता है, उसमें मनुष्यों की भांति रूप, रंग और रस होता है। वह आम मनुष्यों की तरह खाता, पीता तथा व्यवहार करता है परन्तु फर्क इतना होता है कि उसके शरीर में मालिक की मस्ती की धारा हमेशा बनी रहती है। वह जो कुछ भी कर्म करता है, वे कर्म उसको बांधते नहीं, अर्थात् उसके बन्धन का कारण नहीं बनते। सद्गुरु किसी से नफ़रत नहीं करता, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कोई कर्म नहीं करता। उसका स्वभाव अमल है, यानि बगैर मल या मैल के हैं। सद्गुरु की सद्भावना के बावजूद भी, अगर उसके किसी कर्म से किसी को हानि पहुंचती है, तो इसके लिए सद्गुरु जिम्मेवार नहीं है उसको बुरे कर्म का फल नहीं भोगना पड़ेगा। जब सदगुरु अपने कर्म से किसी को लाभ पहुंचाता

है,तो उसलाभ या अच्छाई का फल भी गुरु को नहीं मिलेगा। वह तो भलाई-बुराई के फल से ऊपर है।

इसमें सन्देह नहीं कि लोगों की भलाई के लिए सद्गुरु मनुष्य के चोले में आता है, उसको शरीर धारण करना पड़ता है। परन्तु उसके शरीर की भी बहुत महिमा है, बहुत महत्व है। सन्त तुलसीदास जी ने भी कहा है कि गुरु के चरणों में बहुत ही ताकत होती है।

बन्दौं गुरु पद पदम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥

सद्गुरु राम की चरणरज को छूते ही पत्थर बनी अहिल्या जीवित हो उठी, वह तर गई। जब तुम जीते-जागते गुरु के चरण-कमल को छुओगे, तो तुम भी तर जाओगे। इसी चरणरज की शक्ति को रामभक्त खेवट भली भाँति जानता था और उस चरणरज को छूने के लिए उतावला था। जब भगवान राम गंगा किनारे पहुंचे और खेवट को देखते ही उन्होंने उसे नाव लाने को कहा, तो खेवट के मन में, परमतत्व श्री राम के चरण छूने तथा उनकी रज लेने तथा चरण धोने की लालसा एकदम जाग्रत हो गई। वह भगवान के पांव धोना चाहता था, परन्तु हिचकिचाहट के कारण उनसे कुछ कह नहीं सकता था, तो वह नाव लाने के लिए टाल-मटोल करने लगा। खेवट भोलाभाला, सीधा-सादा व्यक्ति था और भोलेभाले लोगों पर सद्गुरु की विशेष कृपा होती है। भगवान राम ने जब खेवट की हिचकिचाहट का कारण पूछा, तो खेवट बड़ी दीनता से बोला, 'भगवन! मैं पहले आपके पाँव धोना चाहता हूं। क्योंकि मैंने सुना है

कि आपके चरणों की रज लगने से पत्थर बनी अहिल्या नारी बन गई। मेरी नाव केवल काठ की ही है आपके चरणों की धूल लगने से वह बेचारी तो छूमन्तर हो जायेगी। मेरे परिवार को पालने का एकमात्र साधन यह नाव ही तो है। यदि मेरी नाव उड़ गई तो दयानिधान! मैं अपने परिवार का पालन-पोषण कैसे करूंगा?

दया के सागर सद्गुरु भगवान राम बोले, "प्यारे खेवट! आखिर तू चाहता क्या है? साफ़-साफ़ क्यों नहीं बताता?"

भगवान राम के मीठे दयाभरे शब्दों को सुनकर खेवट बोला, भगवन्! मैं आपके चरण धोना चाहता हूं।" यहां पर तुलसीदास जी कहते हैं :

सुन खेवट के बैन,
प्रेम लपेटे अटपटे।
विहसे करूणा ऐन,
जानकी लखन सन ॥

भगवान राम जानते थे कि खेवट पूर्ण भक्त है, वह लक्ष्मण और सीता की ओर देखकर मुस्कराये। फिर उन्होंने खेवट को कहा, 'अच्छा, खेवट! तुम मेरे चरण धो सकते हो।'

खेवट ने बड़े ही प्रेम से भगवान राम के चरण धोये और तब प्रेम से गद्गद् हो कर भगवान राम, लक्ष्मण और सीता को उस पार उतारा। जब पार उत-

कर भगवान राम, सीता द्वारा दी गई सोने की अंगूठी को खेवट को प्रसन्नता से देने लगे,इस पर खेवट बोला, 'भगवन ! आप यह अंगूठी मुझे देकर कैसा अनर्थ कर रहे हैं ? आपका और मेरा व्यवसाय तो एक ही है । एक ही व्यवसाय वाले लोग एक दूसरे से पैसे थोड़े लेते हैं। धोबी, धोबी से पैसे नहीं लेता, नाई, नाई से पैसे नहीं लेता, तो मैं आपसे पैसे क्यों लूं ?' भगवान राम मुस्करा कर बोले, 'प्यारे खेवट ! तुमने यह कैसे कहा कि तुम्हारा और मेरा व्यवसाय एक ही है ?' खेवट बड़ी नम्रता से बोला,'हां, भगवन् ! एक ही तो है। मैं लोगों को इस तट से उस तट पर उतारता हूं उस तट से इस तट पर। आप लोगों को भवसागर से उस पार ले जाते हो, भवसागर से पार उतारते हो। व्यवसाय एक हुआ कि नहीं पार उतारने का। मैंने आपको इस पार से उस पार उतारा है, इसके बदले आप मुझे भवसागर से पार उतार देना भगवन् !"

भगवान राम खेवट की चतुराई और अपार भक्ति को देखकर गद्गद हो गए।

सद्गुरु हर घड़ी, हर समय प्रेममय होता है। प्रेम की धार उसकी हर समय निकलती ही रहती है। जहां प्रेम होता है, वहां नफ़रत का सवाल ही नहीं उठता, प्यार करने वाला व्यक्ति कभी किसी से नफ़रत नहीं करता और न ही जानबूझ कर किसी भी व्यक्ति को नुकसान पहुंचा सकता है। मैं बचपन से ही किसी को जानबूझ कर दुःख नहीं देता था, मेरा विचार था कि यदि मैं किसी को सुख

नहीं पहुंचा सकता, तो कम से कम किसी को दुःख तो नहीं पहुंचाऊं। मैं जीवन भर इस आदर्श पर चलता रहा। शायद यह पिछले जन्मों के कर्मों या संस्कारों के कारण हुआ हो। परन्तु मैंने देखा कि इस आदर्श पर चलने से पहले चाहे कष्टों का सामना क्यों न करना पड़े, अन्त में इस आदर्श पर चलने वाले को जीत ही होती है, इस मार्ग पर चलने से लाभ ही लाभ हैं, हानि नहीं।

अहंकार कारण ही व्यक्ति दूसरों को दुःख देता है। गुरु के चरणों में झुकते ही जब आपका घमण्ड, अहंकार टूटता है, तो गुरु की दया का द्वार आपके लिए खुल जाता है। सद्गुरु परमदयाल होता है। आप यदि गलती भी करो, तो वह अपनी अपार दया के कारण पिघल कर आपके अपराधों को क्षमा कर देता है। आप यदि कोई अपराध नहीं करो, कोई गलती नहीं करो, तो वह आपको क्षमा कैसे करेगा?

भूल करना पाप नहीं है, परन्तु भूल करके उसको न सुधारना मूर्खता है।

वन्दों गुरुपद पदम परागा ।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥

गुरु के आगे झुकने से तुम्हारी अरुचि (किसी काम में रूचि न होना) सुरूचि में बदल जाती है। क्योंकि गुरु दया का भण्डार होता है, उसमें सुगन्ध आती है, उसके मुंह से रस टपकता है और उससे अलग होने को मन ही नहीं करता। उसके पास बैठने से एक विशेष आनन्द की प्राप्ति

होती है। सद्गुरु आपको प्यार तो बेहद करता हैं, परन्तु उसके प्यार में राग अर्थात् मोह या लगाव नहीं होता। उसके प्रेम में अनुराग, आत्मिक प्यार होता है। भक्ति के बाद जो भाव आता है, उसे अनुराग कहते हैं। अनुराग से आदमी ऊंचा उठता है।

आमय मूर में चूरन चारू।
समन सकल भव सज परिवारू॥

सद्गुरु के चरणों की रज बहुत ही सुन्दर तथा अमृत-मयी होती है। वह तुम्हारे काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार, जो भव रूप और दुःख देने वाले हैं, उनका शमन करके, आपको शान्ति प्रदान करता है और आपको ऊपर उठाता हैं। गुरु सब कुछ कर सकता है,क्योंकि व अमल है, बिना मल के है और कर्मों से बंधता नहीं। गुरु का बाहरी व्यवहार भले ही आम लोगों जैसे दिखे, लेकिन वह दुनिया से बहुत ऊंचा है, दुनिया से न्यारा है। गुरु को पहचानो।

चेतन घन घमल विमल निर्मल।
सत्त सदन परम सुख रासी है॥

निर्मल वस्तु हमेशा आकर्षक होती है और गुरु हमेशा निर्मल होता है। सद्गुरु के अन्दर सत् का निवास होता है। सुख तो आपको खाने-पीने की वस्तुओं से भी मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु यह सुख सदा रहने वाला नहीं है, यह समाप्त हो जाता है। परम सुख वह है, जिसका कभी अन्त नहीं होता। सद्गुरु के साथ रहने से

आप उस अमृत को पियेंगे, जिसके आगे सब प्रकार के सुख फीके लगेंगे। परम सुख की राशि तथा परम सुख का भण्डार तो केवल सद्गुरु ही है।

'कोई अगुन कहें, कोई सगुन कहें,
कोई निराकार साकार कहें।
तू सब कुछ हैं और कुछ भी नहीं,
धुर पद धुर धाम निवासी है॥'

कोई उस परमतत्व को निर्गुण कहता हैं, कोई उसे सगुण कहता है। सगुण का अर्थ है गुण सहित, जिसे देखा जा सके। परमतत्व जब मनुष्य के चोले में आता है, तब वह सगुण ही होता है। यह सारा जगत् मालिक का गुण ही तो है, अर्थात् जगत् मालिक का सगुन रूप है। मालिक सर्वाधार है। इस जगत में जो गुण हमें दिखाई देते हैं, जैसे रूप की सुन्दरता, हवा की शीतलता, चखने का आनन्द इत्यादि, सभी गुण आधारित उस सर्वाधार मालिक पर ही तो हैं। सभी सगुण चीजें उसी मालिक ही से निकली हैं। एक भी ऐसी वस्तु नहीं जो मालिक के साथ जुड़ी हुई न हो, उससे सम्बन्धित न हो। संसार सार ही के साथ जुड़ा हुआ है। संसार में आनन्द भोगना चाहिए, क्योंकि संसार सार ही के साथ लगा हुआ है, सगुण, निर्गुण से सम्बन्धित है। निर्गुण के अन्दर सगुण छुपा हुआ है। अतः निर्गुण सगुण के झगड़े बेकार के झगड़े हैं।

अच्छाई-बुराई, झूठ-सच सब कुछ उस सर्वाधार से ही निकला है। द्वन्द्वात्मक जगत् बनाने के लिए, इनको अलग-अलग कर दिया। 'कुछ नहीं' का मतलब यहां

शून्य नहीं है, बल्कि यह है कि जो कुछ उस सर्वाधार से निकला है वह पूर्ण नहीं, बल्कि मालिक का अंशमात्र हो है। यदि हम कहें कि वह प्रकाश है, तो क्या वह शब्द नहीं ? मालिक तो सब से ऊंचा है, उसका किसी के साथ मुकाबला किया ही नहीं जा सकता। 'कुछ नहीं' का मतलब 'न होना' नहीं, बल्कि इसका मतलब यह है कि मालिक अपने आप में एक विशेष वस्तु है,जिसका नमूना इस जगत् में नहीं मिलता, उसकी सुन्दरता का मुकाबला नहीं, उसकी महिमा की मिसाल नहीं। वह अद्वितीय है अद्भुत है।

नहीं मन ने थाह कभी पाई,
नहिं बुद्धि में आई चतुराई।
चित चिन्तन कैसे करे तेरा,
तू द्वैत अद्वैत प्रकाशी है॥

मन भी उसी ही मालिक से निकला हुआ है, मगर वह भी मालिक तक पहुंच नहीं सकता। चित उसका चिन्तन नहीं कर सकता, चिन्तन तो उस चीज़ का किया जा सकता है, जिसकी कोई सीमा हो। अल्बर्ट आईनस्टाईन हमारे युग का सबसे बड़ा वैज्ञानिक हुआ है। उसने अपनी बुद्धि से एक फ़ार्मूला निकाला, जिसके आधार पर जगत् में व्याप्त सभी शक्तियों को समझा जा रहा है। आईनस्टाईन ने कहा, 'जगत्' एक शक्ति है, जिस के अन्दर ठासपन', 'गति' तथा 'ऊंचा जाना' तीन वस्तुयें हैं। इस फ़ार्मूले के आधार पर हवा की गति को पहचाना जा सकता है, पृथ्वी को समझा जा सकता है और प्रकाश की गति को

भी समझा जा सकता है। इस महान् वैज्ञानिक के फ़ार्मूले के आधार पर अनेक आविष्कार हो रहे हैं और उसे दुनिया का सबसे बड़ा वैज्ञानिक माना जा रहा है। इस महान् वैज्ञानिक ने मरने से पहले कहा, 'मेरी खोज तो बस यहाँ तक ही है, इसके आगे तो सर्वाधार मालिक ही है।"

जब मन उस सर्वाधार तक पहुंच नहीं सकता, चित उसका चिन्तन नहीं कर सकता, तो उस मालिक का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

'तू द्वैत अद्वैत प्रकाशी है।'

द्वैत में सदा संघर्ष रहता है इसलिए जगत् में सदा संघर्ष ही रहेगा। अद्वैतवादी कहते हैं कि मालिक दो नहीं, एक है। जब द्वैत तथा अद्वैत दोनों का ज्ञान देने वाला मालिक स्वयं ही है, तो कैसे कहा जा सकता है कि मालिक एक है और कैसे कहा जा सकता है कि वह दो है।

मन बना विहंगम मीन मकर,
मरकट बन कर कूदा अन्दर।
चींटी की चाल चला घट में,
कह उठा तू अगम उदासी है॥

मन चंचल है। सृष्टि में सबसे पहले जीव मछली के रूप में आया, फिर वराह के रूप में आया, फिर मकर के रूप में आया, जो आधा पृथ्वी पर और आधा समुद्र में था। फिर वह कच्छ के रूप में आया। फिर बन्दर के रूप में

में आया। बन्दर के बाद मनुष्य के रूप में आया। मन बन्दर की तरह इधर-उधर कूदता रहता है और पक्षी की तरह इधर-उधर उड़ता रहता है। अब सवाल उठता है कि बन्दर की भांति इस चंचल मन को शान्त कैसे किया जाये? मालिक तो शान्त है। उस शान्त मालिक तक यह चंचल, अशान्त मन पहुंच कैसे? इसका सही तरीका सद्गुरु ही बता सकता है, वह है नाम का सुमिरन। रोज लगातार सुमिरन करने से, कुछ दिन के बाद मन शान्त हो जाएगा। एक जगह टिक जाएगा। सुमिरन के द्वारा मन धीरे-2 चींटी की चालसे अन्दर की तरफ चला जाएगा। जब यह वहां पहुंच कर परम आधार, परमतत्व को छूयेगा तब कहेगा 'तू तो परम उदासी है।' उदासी का मतलब है द्वन्द्व से परे। 'हे मालिक तू द्वन्द्व में नहीं है, राग-द्वेष से रहित है।' उदासी कौन है? जिसको न किसी से नफ़रत है न मोह जिसका सहारा केवल मालिक ही है।

'न हो किसी से हमारा नाता,
न. हम किसी से सहारा ढूंढें।
रहे सदा तेरे ही सहारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी॥

जिसको सद्गुरु मिल गया, उसको सब कुछ मिल गया। ऐसे व्यक्ति की वृत्ति सद्गुरु में ठहर जाती है। वह रहता तो दुनिया में है दुनिया में अपना काम, अपना व्यवसाय या कारोबार भी बराबर करता रहता है, परन्तु लोगों की निन्दा-स्तुति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि

वह सर्वाधार से जुड़ जाता है। 'उ' का यहां मतलब है उधर या ऊपर का और दास का मतलब है नौकर। वह ऊपर का दास है मालिक का दास है, इस जगत् का दास नहीं।

राधास्वामी रूप में प्रकट हुआ,
दर्शन देकर कृतार्थ किया।
निज शब्द से अपना भेद दिया,
घट अघट का सत्य निवासी है॥

जब तक परम आधार, परमतत्व ऊपर बैठा है, उस तक हम प्राणी पहुंच नहीं सकते और न ही वह हमारी परेशानियों, हमारी समस्याओं को समझ सकता है। ऊपर बैठे हुए, वह हमें दर्शन भी नहीं दे सकता। जब वह मनुष्य के चोले में आता है, तभी तो उसकी झलक हम देख सकते हैं, उसके साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। परम-तत्व हमारा आईना है, हमारा आकार उसी में ही दिखाई देने लगता है।

"निज शब्द से अपना भेद दिया।
घट अघट का सत्य निवासी है।।"

परमतत्व नीचे आकर अपनी वाणी के द्वारा राज़ बताता है। सच्चा गुरु किसी भी हालत में अपने शिष्य से कोई बात छुपा कर नहीं रखता, कोई चीज़ पर्दे में नहीं रखता। वह बिना स्वार्थ के, अपना नुकसान करके भी, अपनी हानि यहाँ तक कि अपने को समाप्त करके भी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

शिष्य को सच्चाई बताता है असलियत बताता हैं। सन्तमत में सद्गुरु की संगत का यही मकसद या लक्ष्य है।

प्यारे सत्संगियो! बहुत कुछ कह दिया आपको। मैं आज का सत्सग यहीं समाप्त करता हूं।

सबको मेरा राधास्वामी!

# मासिक सन्देश

## परमसन्त सद्गुरु हिज होलीनेस
## हजूर मानव दयाल जी
### डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

**मेरी अपनी ही आत्मांश, परमप्रिय**
**सत्संगियो,**

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई।

मैंने आपको पिछले मासिक सन्देश में 28 सितम्बर, 1993 तक की सत्संग के दौरे की सूचना दी। उसमें सत्संग के महत्व के सम्बन्ध में, मैंने 'राधास्वामी' शब्द गाने की महिमा बतायी थी। राधास्वामी नाम गाने का मतलब 'राधास्वामी' अवस्था को जीवन में उतारना है। स्वामी जी महाराज ने इस दृष्टिकोण को अनेक शब्दों में स्पष्ट किया है। उनमें से एक शब्द इस प्रकार है :--

"राधास्वामी गायकर,
जन्म सुफल कर ले।

यही नाम निज नाम है,
चित अपने घर ले ।"

जैसा कि मैंने पहले बताया है कि योगीराज भगवान श्री कृष्ण जी ने इसी अवस्था को ब्राह्मीस्थिति कहा है। भगद्गोता में तीन मार्ग नहीं बल्कि चार मार्ग हैं एवं चार योग हैं :

1) कर्म योग
2) भक्ति योग
3) ज्ञान योग
4) बुद्धि योग।

कर्म योग का सम्बन्ध शरीर से है। भक्ति योग का सम्बन्ध मन से है। ज्ञान योग का सम्बन्ध आत्मा से है। और बुद्धि योग का सम्बन्ध सुरत से है। अर्जुन को सम्बोधित करते हुए और ब्राह्मीस्थिति का निरूपण करते हुए भगवान श्री कृष्ण ने कहा है :—

'एषा ब्राह्मो स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्यामन्तकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमुच्छति।'

अर्थात् हे अर्जुन! इसी ब्रह्मलीन अवस्था को उच्चतम अवस्था माना गया है। इसी को विदेहमुक्ति भी कहा गया है। इस अवस्था में रहने वाला साधक नीचे के दर्जों को छोड़ कर सीधा परमधाम पहुंच जाता है। सद्गुरु, सत्संग और सत्नाम सहज में ही हरएक साधक को इसी अवस्था पर पहुंचा देते हैं। हमें यहां पर सद्गुरु शब्द की पूरी व्याख्या करनी चाहिए। सद्गुरु और गुरु में

अन्तर यह है कि गुरु केवल ज्ञान तक सीमित रहता है, जबकि सद्गुरु ज्ञान से परे की अवस्था में पहुंच जाता है। मह हमेशा सत् में रहता है। सत् स्थाई परमतत्व है, जो सभी परिवर्तनों से ऊपर अपरिवर्तनशील है। परमतत्व और जीव के बीच में केवल अहंकार का पर्दा है। यह अहंकार इतना झीना है कि बड़े-बड़े ज्ञानी गुरु इसका शिकार हो जाते हैं और परमतत्व स्वरूप राधास्वामी की लीला को नहीं समझ स ते। दातादयाल जी महाराज ने अपने अनुभव के आधार पर इसी सत्य का इस प्रकार स्वरूप बताया है:

लीला अगम अपार अमाया,
अद्भुत क्या कोई जाने ।
ऋषि मुनि योगी पार न पावें,
ज्ञानी नहीं पहचाने ॥

मैंने पिछले मासिक संदेश की बातें इसलिए दोहराई हैं, जिससे आपको अगले मासिक सन्देश में प्रेरणा मिले।

जहां तक सत्संग दौरे का सम्बन्ध है, मैं 9 नवम्बर 1993 को अमेरिका और ट्रिनीडाड़ से फारिग होकर 20 नवम्बर की रात को देहली पहुंच गया। 21 नवम्बर को प्रातःकाल 11 बजे मैं चण्डीगढ़ मानव सभा के वार्षिक उत्सव पर और परमदयाल जी महाराज के जन्मोउत्सव पर पहुंच गया। उन दिन सत्संग के लिए 28 सेक्टर में श्री कृपाल डोगरा के निवासस्थान के सामने बड़ा भारी शामियाना लगाया गया। इस सत्संग में चण्डीगढ़, हरियाना, हिमाचल

प्रदेश और पंजाब के सत्संगियों की संख्या बहुत अधिक थी। मेरे से पहले होशियारपुर मानव मन्दिर से आचार्य श्री छविनाथ ओझा, श्री नारायनदास डोगरा आदि पंडाल में पहुंच चुके थे। उस दिन का सत्संग बड़ा प्रभावशाली रहा। 21 नवम्बर सायंकाल को मैं मानवता मन्दिर होशियारपुर पहुंच गया। मेरी अनुपस्थिति में 18, 19 नवम्बर को आचार्य शब्दानन्द जी, आचार्य छविनाथ ओझा, आचार्य हन्सराज महाजन ने परमदयाल जी महाराज को सत्संगों के रूप में श्रद्धान्जली दी। मैं 21 नवम्बर के बाद में अधिकतर दिल्ली जाता रहा, क्योंकि पहली जनवरी 1994 को पोलेण्ड वाला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित था। 9 दिसम्बर को इसी सिलसिले में कुमारी गिरजाव्यास के निवसस्थान पर और उन्हीं की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के सम्बन्ध में रात के साढ़े 10 बजे तक सभी लोगों ने रन्तर्राष्ट्रीय हम्मेलनों को सफल बनाने के लिए सुझाव दिए। 29, 30, 31 दिसम्बर और जनवरी को नई दिल्ली में नेहरू लायब्रेरी म्यूजियम में सत्संग आयोजित हुआ। हमने इस सम्मेलन को अध्यक्षता के लिए आर्थोडोक्स चर्च के अध्यक्ष डा. को आमन्त्रत किया था। उन्होंने हमें बताया कि नेहरू लायब्रेरी म्यूजियम में हमारी रिजर्ववेशन का प्रार्थनापत्र नहीं पहुंचा था, इसलिए उस स्थान पर सम्मेलन नहीं हो सकेगा। जब मैं लायब्रेरी म्यूजियम गया, तो वहां के निर्देशक ने भी यही कहा कि उन दिनों के लिए म्यूजियम के सभी सत्संग हाल रुके हुए थे।

मेरी विशेष प्रार्थना पर उन्होंने मेरा नया प्रार्थना-पत्र स्वीकरा

किया और हमें एक बड़ा सत्संग हाल इस कार्यक्रम की सफलता के लिए दे दिया। इसके फलस्वरूप हमारे सम्मेलन के २ सत्र बहुत ही सफल रहे और सैंकड़ों की संख्या में सत्संगी उसमें सम्मिलित हुए।

पहली जनवरी रात्रि को ही हम कार के द्वारा मानवता मंदिर होशियारपुर में पहुंच गए! मैं यह बताना भूल गया कि विदेशों से जो 20 विद्वान सम्मिलित होने के लिए आने थे, वह न आ सके, क्योंकि दिसम्बर की छुट्टियों के कारण उनको किसी भी हवाई जहाज में स्थान नहीं मिल सका था, किन्तु इन सबकी कसर वेक फोरेस्ट नार्थ कैरोलीना विश्व विद्यालय के दर्शन और धर्मशास्त्र के अध्यक्ष श्री रोबर्ट हेल्मस ने पूरी कर दी। वह 28 दिसम्बर प्रातःकाल 2 बजे दिल्ली अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुंच गए। मैं तो उन्हें नहीं देख सका किन्तु साधना ने उन्हें दूर से देख लिया। हमारे साथ श्री रवि पन्डित भी डा.हेल्मम के स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर मौजूद थे। मैं तुरन्त श्री बोब हेल्मस के पास कस्टम कक्ष में पहुंच गया। उनके सामान आने में काफी देर लगी, फिर भी हम करीब 3 बजे प्रातःकाल फारिग हो गए। हम सब डा. हेल्मस को ताजमानसिंग होटल में ले गए क्योंकि श्री रवि पण्डित और उनके अफसर श्री सैटी जी ने मेरे और डा. हेल्मस के लिए 209 नम्बर का कमरा सुरक्षित कर दिया था। कु. साधना तो हमारी कार में फरीदाबाद चली गई, क्योंकि उन्होंने वहां पर डा. हेल्मस के लिए प्रबन्ध करना था। श्री रवि पंडित भी मेरे ही

कमरे में सोफे पर सो गए। प्रातःकाल हम नाश्ते के बाद फरीदाबाद पहुंचे। आधा घण्टा रुकने के बाद हम दुपहर एक बजे डा. हेल्मस के साथ दुपहर के के भोजन के लिए ताज होटल पहुंचे। 2 बजे दुपहर को हम 3 दिन तक होटल में रहे, जबकि कुमारी साधना 31 जनवरी को ही होशियारपुर पहुंच गयीं। हम पहली जनवरी को दिल्ली से रवाना होकर रात्रि को चण्डीगढ़ रुक गये। दूसरे दिन हम 2 जनवरी को प्रातःकाल मानवता मन्दिर पहुंच गए। यहाँ पर श्री नारायनदास जी ने शानदार टैन्ट लगवाया दिया था। सत्संगियों की भारी भीड़ हमारे स्वागत के लिए मौजूद थी। ज्यों ही श्री डा. हेल्मस मेरे साथ गाड़ी से उतरकर शामियाने की ओर बढ़े तो सभी सत्संगियों ने उनका स्वागत किया। नाश्ते का प्रबन्ध कु. साधना ने अपने ओफिस में किया था। श्री बोबहेल्मस ने नाश्ते की बहुत प्रशंसा की। ठीक 10 बजे पंडाल में सत्संग शुरू हुआ। डा. हेल्मस मेरे साथ मंच पर बैठे। कु. साधना सक्सैना, आचार्य शब्दानन्द और श्रीमती सीता देवी ने अलग-अलग शब्द पढ़े। सत्संग का मुख्य शब्द था :

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता,<br>
ज्ञान के भन्डार से।<br>
सहज छुटकारा मिले,<br>
सबको कठिन सन्सार से ॥<br>
कहने को तो बंध मुक्ति,<br>
कल्पना मन की सही।

बिन दया सद्गुरु के वह,
मिटते नहीं हैं जीते जो ।।
नाम का दे आसरा,
चरणों में अपने लीजिए।
शब्द की महिमा बताकर,
अपना सेवक कीजिए ।।
सच्चिदानंदम अखंडम्,
केवलम् निज रूप हो।
निज दया से जाए दुःखदाई,
महाभव कूप खो ।।
आपका है आसरा,
और आपका विश्वास है।
राधास्वामी तारिये,
यह भी तुम्हारा दास है ।

आचार्य शब्दानन्द जी ने इसी शब्द का अंग्रेजी भाषा में छन्द तब अनुवाद पढ़ा । सत्संग की समाप्ति पर दुपहर के भोजन के पश्चात् 2 जनवरी को ही हम देहली के लिए रवाना हो गए, क्योंकि हमें 3 जनवरी को इण्डियन ऐयर लाइन्स के द्वारा मणीपुर के लिए रवाना होकर और और एक रात कलकत्ता में विश्राम करके 4 जनवरी को ही परमदयाल जी महाराज की पोती डा. अगम के विवाह के लिए मणीपुर पहुंचना था । इसलिए इस मासिक

संदेश के लिए यहाँ तक की सूचना पर्याप्त है। मैं सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूं कि आपको उपरोक्त धारणा पढ़कर सच्चा ज्ञान, सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति की उपलब्धि हो। आप और आपका परिवार स्वस्थ, सुखी और सानन्द रहे।

सबको राधास्वामी ।

तुम्हारा फकीरमय
मानव

✖ ✖ ✖

## परमपुरुष पूर्णधनी सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हजूर मानवदयाल डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का शिवरात्री का टूर प्रोग्राम मार्च, 1994

| तारीख | कार्यक्रम | स्थान |
|---|---|---|
| 7.3.94 | होशियारपुर से इलाहाबाद के लिए प्रस्थान | |
| 8.3.94 से 11.3.94 तक | इलाहबाद और राधास्वामी धाम | श्री सुमित्रा कुमार श्रीवास्तव 397-13-सी-2 ए मीरापुर इलाहाबाद |
| 12.3-94 | लखनऊ के लिए प्रस्थान | |
| 13.3.94 | | श्री कृष्ण मोहन तिवारी 367, मोती नगर, |
| 14.3.94 | लखनऊ सत्संग | लखनऊ |

| | | |
|---|---|---|
| 15.3.94 | सीतापुर के लिए प्रस्थान | |
| | सायं 4 से 6 बजे तक सत्संग | कु. अगम, श्री वास्तव म. नं 491 ऊंचा टोला, तरीनपुर सीतापुर |
| | 15.3-94 रात को ही मिश्रिक तीर्थ के लिए प्रस्थान | |
| 16.3.94<br>17.3.94 | मिश्रिक तीर्थ | श्री कृष्ण मोहन श्री वास्तव फकीर सत्संग केन्द्र, मिश्रिक तीर्थ सीतापुर |
| 18.3.94 | लखनऊ वापसी | |
| 19.3.94<br>20.3.94 | कन्नौज | दयाल स्वरूप सुपुत्र श्री लड़ैते लाल मकरंदपुर, कन्नौज |
| 21.3.94 | दीदारगंज | श्री राम चन्द्र बीज विक्रेता दीदार गंज, कन्नौज |
| 22.3.94 | लखनऊ से शाम को होशियारपुर के लिए रेल द्वारा वापसी। | |

नोट : किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण यदि कार्यक्रम में परिवर्तन किया गया, तो उसकी सूचना दे दी जाएगी।

# इन्सानी प्रकृति केवल खुशी है

प्रत्येक समझदार मनुष्य की इच्छा क्या है? इस प्रश्न के उत्तर की ओर कम व्यक्तियों का ध्यान जाता है। यदि सोच-विचार से काम लिया जाये और इसका उत्तर समझ में आ जाये तो हर एक मनुष्य की जिन्दगी में अभी परिवर्तन आ जाये।

न प्रश्न जटिल है न इसका उत्तर कठिन है। प्रश्न तो मुश्किल से ही किसी की ज़बान पर आता होगा परन्तु उत्तर व्यावहारिक रूप में प्रतिदिन प्रकट होता रहता है।

मनुष्य की इच्छा केवल खुशी प्राप्त करने की है। वह खुश रहे। मनुष्य खुश होने तथा खुशी के समुद्र में हर समय डुबकी लगाने का इच्छुक रहता है। इस के सिवाय और किसी बात की इसे इच्छा नहीं रहती और जितने कारोबार में व्यस्त, परिश्रम करना, दौड़-धूप और संघर्ष आदि के दृश्य दिखाई देते हैं सब की तह में और सब की आत्मा में केवल इसी खुशी का भाव छिपा रहता है। खुशी का तत्व उस में स्वाभाविक है। और यही नहीं बल्कि धर्म, शासन का ढंग, रहन-सहन का ढंग, जातिवाद, ज्ञान और संगत आदि सब ही का आधार केवल

इन्सानी खुशी का भाव है। यही असल है और शेष सब नकल हैं। यह पूर्ण है, शेष सब अंश हैं।

हम क्यों पढ़ते, लिखते हैं ? केवल खुशी की प्राप्ति के लिए ! हम क्यों आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं ? केवल खुशी प्राप्त करने के लिए ! हम क्यों विवाह करते हैं ? केवल इसीलिए। हम क्यों सभ्यता तथा नैतिकता के इच्छुक हैं ? केवल खुशी के लिए। हम क्यों ईश्वर की पूजा, परमात्मा का भजन; ब्रह्म की उपासना, देवताओं की आराधना, योग की क्रिया, ज्ञान, ध्यान का साधन, वेदों का पाठ और कुरान का अध्ययन करते हैं ? केवल इसी खुशी की लालसा, खुशी की तलाश तथा खुशी की पूर्ति के लिए। यदि खुशी की इच्छा न होती तो ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, धर्म, ज्ञान, ध्यान सब एक ओर पड़े रहते और निरर्थक रहते। हम खुदा, ईश्वर और ब्रह्म तक को अपनी खुशी के आधीन रखना चाहते हैं और इन सब को इसकी प्राप्ति का साधन बनाना चाहते हैं।

सुनने वालों को सुन कर आश्चर्य होगा कि ईश्वर तक का अस्तित्व हमारी खुशी के आधीन है। खुशी मुख्य है। वह गौण है। खुशी महत्वपूर्ण है। खुशी आवश्यक है, शेष सब वस्तुयें अनावश्यक हैं। यदि किसी और युक्ति से हमें खुशी मिलती तो शायद हम भूल कर भी भजन, बन्दगी, पूजा, उपासना तथा कर्म न करते और ईश्वर की दया की इच्छा को अपने दिल में प्रविष्ट न होने देते।

यह इतनी सच्ची बात है कि चाहे कोई लाख प्रयत्न

करे इसे झुठला नहीं सकता। हज़ार कोई विद्या और बुद्धि की दलीलों से काम ले परन्तु इसका खण्डन करना बहुत कठिन है। कोई चाहे सारी आयु कुछ भी कहता फिरता रहे परन्तु यह एक ऐसा सच्चा विषय है कि कोई दार्शनिक, बुद्धिमान् और तपस्वी इसको झूठा सिद्ध नहीं कर सकता। मार्ग से भटका हुआ मनुष्य डर के मारे सच्चाई को अपनाने से कांपता है। बात उसकी समझ में आ भी जाती है लेकिन उसके मानने से उसकी जान निकलती है। जान लाख निकले, तन बेकाम हो जाए, हड्डियां चूर-चूर कर दी जायें लेकिन सच्चाई, सच्चाई है। साँच को आंच नहीं और खुशी वह ठोस सच्चाई है कि उसके ऊंचे सिर को दलील का हथौड़ा, मज़हब का हथकण्डा और इन्सानी बुद्धि का डण्डा नीचा नहीं कर सकता।

साँसारिक और सामाजिक धर्म हमारी आंखों पर पट्टी बांध कर हमें कोल्हू का बैल बनाना चाहते हैं। लेकिन उनको सफलता आज तक न कभी हुई और न हो सकती है, और न होगा, खुशी का पलड़ा सदैव झुका रहेगा और अज्ञानता के पल्ले के उठते ही वह ज़ोर-शोर के साथ प्रकट होती रहेगी।

ऋषि सब से अधिक ज़ोरदार ढंग में इसका उपदेश सुना गए हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपनी स्त्री मैत्रेयी को यही विषय समझाया है और इसी को सब कर्म, धर्म, व्यवहार, परमार्थ और साँसारिक कारोबार का मूल कारण ठहराया है। वे कहते हैं :—

"ऐ मैत्रेयि ! पति, पति की दृष्टि से प्यारा नहीं

खुशी है। आत्मा कहते किस को है? केवल खुशी को। तत्व क्या वस्तु है? केवल खुशी। सार तत्व का उद्देश्य क्या है? केवल खुशी और खुशी के सिवाय कुछ नहीं, न हो सकती है और न होगी। यही सब कुछ है और इसी के सहारे सारे खेल होते रहते हैं। प्राकृतिक प्रबन्ध का केन्द्र खुशी है। दोनों लोकों का आधार केवल इसी पर है। यह न होती तो कुछ न होता। खुशी ही वह वस्तु है जिस ने आरम्भ से लेकर अन्त तक अपने प्रकट रूप का तमाशा दिखा रखा है। उत्पत्ति तथा प्रलय, मृत्यु तथा जीवन सृष्टि तथा अस्थिति का आधार केवल खुशी है।

खुशी अस्तित्व है, शेष सब गुण हैं। खुशी ब्रह्म है, बल्कि आत्मा की दृष्टि से प्यारा है। ऐ मैत्रेयि! लड़का, लड़के की दृष्टि से प्यारा नहीं बल्कि आत्मा की दृष्टि से प्यारा है। पत्नी, पत्नी की दृष्टि से प्यारी नहीं बल्कि आत्मा की दृष्टि से प्यारी है। वेद, वेद की दृष्टि से प्यारे नहीं बल्कि आत्मा की दृष्टि से प्यारे है। ईश्वर, ईश्वर की दृष्टि से प्यारा नहीं बल्कि आत्मा की दृष्टि से प्यारा है। इसी तरह जो कुछ है व होगा, वह अपनी नज़र से प्यारा है और यही आत्मा को जानने और समझने का विषय है।"

इस माननीय पुस्तक में इस पर बहुत पृष्ठ लिखे गए हैं और पढ़ने वाले हमारी बात पर बिना तर्क-वितर्क स्वयं ही परिणाम निकाले कि यह ठीक और सच्ची है या झूठ और गलत है!

यह आत्मा है क्या वस्तु? केवल हमारी अपनी

शेष सब माया हैं। खुशी रहमान है, इसके सिवाय सब शैतान हैं। खुशी हो का नाम परमात्मा है और शेष सब शैतान हैं

वेदान्ती कहता है "अहं सत्यम्, चित्यम् आनन्दम्"। सूफी कहता है "ज़ात ही ऐन इल्म, ऐन हस्ती और ऐन सरूर है।" "मन्सूर" जिस का वर्णन प्राय: आता है अनालहक का शोर मचाता हुआ सूली पर चढ़ गया। वह यही जज़्बा था जिस के लिए, जिस के नाम पर और जिस के लिए हम देश, कौम, ज्ञान, बुद्धि आदि सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाते हैं। वह और कुछ नहीं केवल हमारी ज़ात और हमारी ज़ात की अपनी खुशी है। यही हमारा रूप है, यही हमारी आत्मा है, यही हमारी असली हस्ती, ज्ञान और सरूर है। यही सत्, चित् और आनन्द है।

यूरोप में एक कहावत है "जब बन्दरिया का चूतड़ जलने लगता है तो वह अपने बच्चे को उस के नीचे रख लेती है।" माना कि यह असभ्य कथन है। सम्भव है चूतड़ का शब्द सुन कर लोग कह बैठें कि यह व्यक्ति असभ्य है। अजी! हम सभ्य हों या असभ्य हों, इससे वाद-विवाद नही। बात तो यह है कि इस में सच्चाई है या नहीं! सभ्यता तथा असभ्यता, नेकी तथा बदी, सच्चरित्रता तथा चरित्रहीनता झूठ तथा सच्चाई आदि भी तो इसी हमारी खुशी के आधार तथा सहारे पर रहते हैं। इस द्वन्द्व जगत् की सारी चीज़ें खुशी के आधार पर स्थिर हैं। इस द्वन्द रचना के सारे दोपने की सूरतों को कौन घटता रहता है? केवल हमारी खुशी। क्रमशा

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

# Manav Mandir

## ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Thursday, 10th February, 1994

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

# SPIRITUAL LIFE

## Data Dayal Maharshi Shivbrat Lal Varman Ji Maharaj

The path of Tantra (pleasure) and the path of Mantra or meditation, both are the paths of success. Neither of them can be called good or bad. Whatever is being said here is not due to any pre-dice, hatred, or jealousy, but on the basis of the experiences of the saints and sages of the hoary past and the present great souls. If we are prejudiced and say that the path of one faith is right and the other is wrong, it would be unjust and not fair. We should consider a man in whatever situation he may be to be worthy of spiritual life. We should never condemn either of the two paths or prefer one to the other. There is no doubt that in the beginning one may appear to be very attractive, but in the end it proves fatal and the other path seems to be very rough and difficult to follow, but in the end it proves to be useful and helps us to reach our goal. The

path of Tantra (pleasure) takes us away from the advancement of spiritualism, because it makes us caught up in the mesh of sensuous pleasures which are the hinderances for the advancement of soul to the higher level. But the other path though seems a little rough, yet it gives us bliss in the end and it definitely helps the soul to advance further spiritually.

The path of Tantra [pleasure] turns us away from traditions, while the path of Mantra does maintain traditions. That is why the experienced, enlightened persons, perfected souls and sages do not recommend to follow the Path of Tantra or Tantra Shastra (the Science of magic) because this Path is dangerous and proves harmful in the end for the persons who follow or adopt this path and also for the society. On the other hand, the Mantra Shastra [the science of meditation) has been recognised and recommended by the saints and sages.

When I was in Lahore many Tantriks (the followers of the science of magic) used to come to me for discussions. They had many doubts in their mind. I tried to remove their doubts sincerely with arguments. But they didn't understand my point of view fully, because of their deep-rooted prejudice. One of these Tantrics who was desirous of destroying a Punjabi ruler, who was very cruel, came to me for

advice. I told him that the path of Tantra (magic was very dangerous and he should not adopt that path. He went away. I do not know what happened to him after that.

The science of Tantra is also a kind of the science of Mantra (meditation), because one has to concen- and meditate in this Path also. But the techniques adopted in this Path are very dangerous unpleasant, and hateworthy. Often some woman is associated to follow this technique. The Mantras or the incantations of this technique are only one worded. The science of Mantra makes us follow the subtle Path. The main source book of the science of Mantra is Rig Veda which in reality is the main book of spiritualism according to Vedic traditions, the rest of the vedic literature is a kind of commentary on Rig Veda. Even the Upanishads are secondary in this context.

The Vedic tradition is not in favour of adopting the path of Tantra, because it causes troubles and proves to be dangerous and harmful eventually.

Now listen to me what is Tantra and what is Mantra ? Tantra has been derived from a Sanskrit word 'Tant" which means extension. It is a kind of greatnet, inwhich a practitioner is caught up, if he

is not very cautious, and also makes others caught up in this net.

What is Mantra ? This word has been derived from the Sanskrit root "Mantra, Mantri" the word means "advice". In English it may be called suggestions. The meaning of the word Mantra in the Vedas are prayers addressed to the (Gods or natural powers). These are the descriptions of functions and qualities of God creator or Brahma and the praises of the Lord.

The purpose of explaining the significance of Mantra and the Tantra is that you should understand its import. Neither of them should be considered superior to the other. It is possible that one among millions of people may be able to attain perfection by following the Path of Tantra but usually people get caught up in the net of sensuous pleasures and worldly enjoyments in this path and cannot advance spiritually. But this is not the case by following the Path of Mantra. Mostly people are successful in following this path. But if they are not successful in this life, they are sure to succeed in their next births because of their good Karmas.

The nature of every human being is different. Some people have divine tendencies. They are

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

always desirous of following the divine path. The others have demonic tendencies and they are desirous of following the demonic path. Some people may attain perfection even by following the demonic path, it is possible, but usually it is not possible. Although the Path of Mantra is very useful, spontaneous and good, yet we cannot condemn the Path of Tantra because this path is also not totally devoid of spiritualism. Every individual has the right to adopt any path. There is no doubt that the path of Tantra makes us caught up in the mesh of sensuous pleasures and the Path of Mantra leads us to the Path of spiritualism. But choice is ours to adopt either of these two paths.

These two paths are also called Shukla Marg (the path of light and Krishna Marg (the dark path) and are also called the path of light, intellect or the path of heaviness. One is free to adopt either of these two paths, but one has to be cautious of the pros and cons of adopting any path.

The first condition is fearlessness. A person who is afraid and disturbed must adopt discipline. Most people are of the nature of hurrying and rushing. If the path of Mantra is followed even partially, it will help the follower to slow down and he will be

less perturbed.

The second condition is caution, discipline, courage and firmness. Persons who have these qualities in them will certainly attain success. Those devoid of these qualities are subject to duality of mind and illusion. They are caught up in doubts and lose the wealth of spiritualism. No one knows when they will get the opportunity to advance spiritually. May be that they get this opportunity after many births. A well disciplined person has a great power of tolerance. One who always makes hurry is crazy. Those nations or races, which are in the habit of hurrying disappear sooner like the clouds.

Hindu or Arya race, includes Tibet and China besides India and it is true. Whether the Aryan race may appear to be autocrat, the most important condition for the activity of spirituality is the very power, which makes a person habituated to tolerance. Wherever there is tolerance there will be success. Effort is also a condition by which the succes is attained.

The practitioner should not possess a weak and doubtful nature, neither he should be possessed by

illusion. Where there is doubt and illusion success will automatically be delayed and you will get that success after many incarnations. The Aryan race is supposed to be sup:rior, but one should not conclude that non-Aryans are devoid of spirituality. Everybody is equally capable of achieving spiritual perfection. The only difference is that the Aryan race is more inclined towards spiritual perfection. The only differ-ence is that the Aryan race is more inclined towards spiritual perfection than the non-A yan races, who are interested more in material and worldly things and professional success.

These are some conditions, which have to be followed by the practitioners of spiritualism. But one should not conclude that a practitioner should run away from the world. On the contrary, every person should do his duty, earn his own livelihood and also practice spirituality. Just as an artist or musician learns his art by practising it gradually but constantly, similarly a practitioner of spirituality should grow gradually by practicing spirituality while living in this world.

The tendency of spirituality exists even in ani-mals and the plants. But they do not have the tendency to realize because they are not completely developed in mind.

The real goal of the trinity is to become the master of the mind. Those who have not been initiated cannot understand it fully. The initiated practitioner can understand it easily. The initiated persons, being disciplined do not misuse their physical, mental and spiritual powers. From this understanding or knowledge there are no wrong views about spirituality. The wrong views lead to destruction. The initiated devotee, has control on his body and mind his condition is good and stable. There is no need of too much bodily strength for becoming spiritual, though the aspirant must have a healthy body free from diseases. A healthy body is necessary for a healthy mind.

The effect of spirituality must be so strong on your mind that it should not be shaken.

# A WORD TO CANADIAN

By

## His Holiness Param Sant Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj

Young generation of America and western countries, in general, is after spirituality, but their technology and science does not permit their senses to believe in the spirituality. The way of Sadhana which is given to you by Indians or by someone else in your countries, has not become fruitful. Why ? Those men, who have got scientific brain, will not have faith unless they are taught spirituality based on the present Physics and Chemistry. In our Indian system we are taught from the very beginning that it is essential to remain pure in thinking, word and deed. This is the fundamental law of Hindu philosophy. MANA, BACHANA AUR KARMA SE SHUDDHA RAHO (Be pure in your thoughts, words and deeds). It means your thinking, your words and your actions must be pure, free from hatred, free from jealousy,

free from undue greed. These are the teachings of the Saints. If one follows this principle, he can attain spirituality, otherwise not. But if I, now, say that foreigners will not have a faith, I give you the scientific proof of it. You know Newton's theory. If you move your hand, motion or action of the hand, vibration of hand goes up to the stars and comes back and effects the same place from where that motion had started. Is it not the Newton's theory ? Yes, it is. The motion of my hand is a physical action. Our mind is also a body made of subtle elements. In your mind and thinking, the same power, light, Akasha (Ether), water, solidity, they are all in that matter. Proof of this is that when we form an image, it immediately vanishes and another image comes. It proves that there is a liquidity and solidity in our thought. Our thinking goes high. There is air in it. You get certain sort of strength in your thought, which becomes strong if there is Light also. When our mind thinks anything the same action of Newton's theory comes therein. Our thinking goes up in the sky and its action comes back at the same place from where it has oozed out. Only those men, who do not entertain any evil idea and do no mischief or harm in any way, can attain spirituality. Because in foreign countries and even in India now, we are not free from evil

and have no control over our mental thinking, therefore we remain miserable. What is spirituality ? I don't know what Indian Sages feel about spirituality ! What I feel is that it is to attain a stage or attain a perfect bliss in ourself which is free from jealousy, hatred and passionate ideas. When this comes then we attain that stage. If the foreigners are told the correct way of living then only they can attain the stage of spirituality otherwise not. The present system of elections in Democracy in our country or in other countries is a sweet poison for the human race. I wrote a book on it some 24 years back. Why ? In the elections, one thing, we keep in mind, is hatred. One keeps jealousy in one's domestic life. Now these political parties, what they do except spreading jealousy on national and international level ? How many mischiefs, these people make ? You are seeing the Water Gate Sandal. What was there ? The same thing. So, in my opinion, peace on this earth is not possible. So those men who want to attain this, unless they keep their mind free from jealousy,hatred, wrong and undue greed or anything, they cannot attain spirituality. You may do any kind of Sadhana, unless these fundamental principles based on science or on Newton's theory, are not followed,peace cannot be had. I am sorry I am not finding proper words to express my inner feelings, but I am trying to explain

to you the answers of your questions. The fundamental principle of attaining spirituality is to make one's mind pure. When your mind will be pure and pure thoughts will come into your mind, those thoughts will go into the atmosphere and when those will come back, it will affect your soul. If you will feel hatred, if you have got evil thoughts in your mind, the same thoughts will come back according to Newton's theory.

**Canadian :**

How can a man abstain from evil thoughts and entertain good and positive ideas ?

His Holiness

In my opinion if one man is desirous of anything, he must keep that strong idea in his brain. If one wishes that his mind should be pure, if he struggles, he will come to this point. If anybody says that any Guru will tell you something or do some magic to you, it is all wrong and all false. Guru means Gyan (knowledge). Those who follow that knowledge, can be benefited. You are doing Sadhana. There are so many people who do Sadhana. When they do Sadhana they mnst have any aim and object in their mind. Why are you doing Sadhana? For

what purpose are you meditating ? There must be some desire. If one man, with that desire in his mind, does the Sadhana, he will be successful. But if one man does Sadhana without any aim and object, that Sadhana will not help. I think I am very clear. I gave an idea for you foreigners, whom Physics and Chemistry will help. It is Newton's theory. When the motion of gross matter touches that, the motions or movements of your mind also go above. This world is all motion. Now you see that aeroplane is flying into the space. The ground people control it. Here the electricity works and brings that action which is visible to the people. This thinking of mind is not visible but it has forms -- size, shape, colour and quality. Photographs, if taken by means of a camera, can be visible but when I see you with my eyes your impression is formed in my brain. My mind perceives your image, it exists and has size, shape, colour and quality. Similarly my reflection is falling on you. This is the law of nature. In this way we create our mental world, which is made of subtle matter ; whereas external world is made of gross matter. Creator of the world is nothing but a law of nature which is called radiation.

Those people who wish to attain spirituality in

Sta'e of bliss must keep a strong desire. Only those persons who are not peaceful in physical and mental life and have adverse experience of the sexual world try to have spirituality. This is called Vairagya (non-attachment) in our Hindu scripts. Spirituality is attained according to the degree of Vairagya one keeps. It is not for every ody. Suffering of a man forces him to go beyond the physical and mental region. This is my answer which I could think in my mind. I do not say that whatever I say is right, but it is my conclusion. I wrote a book entitled Key to Freedom" in 1941 or 1942. According to my reading, I wrote there hat Indians who are now struggling for freedom of India, will have more worries and troubles after getting freedom. What they are feeling now ? Because my reading became true, although India is independent but people are not at peace. Why ? Because their thinking is not in their control. That's what I feel. Therefore, if you want to attain spirituality, I do not say that a Sadhana is wrong, but unless, you will try to keep your mind pure, you or I, may be anybody, one cannot attain the state of spirituality.

Canadian :

Does true Sadhana or Real Sadhana make one's

mind pure ?

His Holiness

Sadhana does not make one's mind pure. Sadhana creates your will power. If you have not got the will to keep your mind pure, you may do any kind of Sadhaha your mind will not be pure. This is my experience of life. So if anybody does Sadhana, he must first think why he wants to do this and for what object. If anybody is poor and he wants to be rich, he must keep this idea in his brain and then do the Sadhana. He will attain richness. Therefore, two things are necessary, Satsanga (association of perfect man) and Sadhana, both together. Now you do Sadhana. There is a possibility of your falling down in such a way which I cannot express. When the mind will be conce trated here (between eyebrows) will power will be increased. Whatever one wishes, it becomes So unless he has not got good association, I never tell anybody the way to do Sadhana. W y ? I have had an experience in 1942 in my life. There was a woman. Her husband was an inspector in Telegraphs. She had three children. She came to me at Ferozepur City in Punjab State. She was doing Sadhana. She used to see my image in red sun and

used to listen the Sound. She asked me that she had 3 children who were the cause of interruption in her Sadhana. They did not allow her to sit in Sadhana. She requested me to ask her husband to help her in looking after the children so that she might be free from worries. At that time, I was not definite, but my conscience believed that it would harm her children. There was a physician, Shri Wali Ram, sitting besides me. I told him that I felt that her three children would die. I prophesized. He said why ? I told him that she was doing Sadhana in her brain. There she saw my image in red Sun. She now wanted to be free from the worries of her children. Neither she had got her mother nor a sister who could help her. So her strong desire to be free from her worries, caused by her children, showed that her children must die. It was my conclusion. When she left, I wished her that Data Dayal (Merciful God) would help her for what she wanted. Her three children died within 9 months. From that time onward I never initiate the people. I simply tell them to try to make their minds pure and always think good things. When you do the Sadhana, what is that ? Your mind becomes strong and your wishes must be fulfilled up to a certain limit according to your Sadhana. But if you have got wrong

ideas in your brain, you are not sensible enough; you will ruin yourself. In our Hinduism, we do the process of Sadhana in Gayatri Mantra. It was given to the high class people and not to the low caste. What is high class ? Those who have got good ideas and are pure minded and true to themselves are the high class. But those who are not, they should not do any practice. So you do your Sadhana. I do not say that you should not do it, but keep your mind pure and be mindful of what you want, and then do Sadhana. You will be successful. That is my personal observation. People are there ; I do not know them. They do Sadhana. Whenever they do, they create my image and say, "Baba, you have come and fulfilled our desires." I say that I do not know them. I know that I did not go.

Most of the religions, whether in India or in foreign lands, are based on ill will and hatred against others. As such they are not right. They have exploited the innocent souls and put mud into our eyes just to gain their own benefit.

Anything which you keep in your mind, if you will do Sadhana, the idea which is in your mind, will develop. I wrote a book in which I said why Jesus Christ was crucified ? Why Mahatma Gandhi was shot dead ? I gave an answer, Jesus Christ used to

hate the evil and hatred the evils-doers, because he had hatered in his mind against evils and evils doers, when he meditated the hatred ideas cropped up and he was crucified. Where lies the root of Mahatma Gandhi' non-cooperation and civil disobedience movements ? Because he was troubled in Africa. He was personallys insulted. In his conscience he had an idea of revenge. His mind became pure afterwards. But the object with which he started non-cooperation, was the cause of his being shot. That is my view. Now take Lord Krishna. He joined the Pandavas in their war against the Kaurvas. What happened ? His own family, the Yadavas fought with one another and died during the life time or Lord Krishna. As you sow, so shall you reap. We cannot be free from our thinking First is thinking, and then comes the dead. The man cause is your thinking One cannot control his mind. There fore, ideas given to a man make an ideal of the stage, which is free or above the thinking. Then you will attain this, otherwise not. I have given answer according to my ability and according to my circumstances.

Canadian :

I have a question which concerns the above matter. Can one be always able to change the flow

of one's thoughts ? I beg Pardon. My question is that sometimes I had thought in my life, which I tried to change but I could not. I tried through labour. Sometimes the change is easy, but then more thoughts crop up.

This happens in spite of utmost efforts. Sometime thoughts change without much effort, at another time they don't change, however hard one may try. Therefore, I feel, we have no free will regarding the change.

His Holiness

What you have said is cent per cent correct. But its expression for the masses, in this way, is not desirable becaue people get discouraged. Do you follow what I say ? It is only at that time when man wants to free himself from the bondages. The similar events also occurred in my life. Sometimes the ideas come to my brain, which I do not want but these do come. What do I do ? Because I have realized that these ideas, which come to me, are nothing but suggestion and simpressions which my brain accepted either from my past life or present life or by reading books or by feelings, with this knowledge, those ideas, which creep in my mind and which I do not

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

want, will leave no effect on my brain. But those ideas which I have taken into my brain, when I was ignorant of the truth these do come in dream, if not in wakefulness I have worked in the 1st Great War as a Station Master and Telegraph Instructor. Nearly all my dreams bring engines, rails and telegraphy, but this temple or you people or my other friends never come into my brain. Never. At that time I was ignorant ; I had been hinking that whatever visions were coming were real. But now I have found out that whatever I think is nothing but (Maya) illusion and delusion. Any other question ?

Canadian :

No, Sir, Thank you very much.

# Four Dimensional Philosophy
OF
# Indian Thought And Plotinus

BY

*H. H. Manav Dayal Dr. Ishwar Chand Sharma*

At the very outset, I would like to define Indian thought as that ethico-metaphysical philosophy, which has its roots in the four Vedas Rig, Sama, Yaju and Atharva Samghitas-Collections (four dimensional essence) of the experiences of the sages, engaged in the spiritual search of God, Nature and Man. Further this very thought has its roots in the Brahmana Granthas which are the explanatory and definitional part of the Vedas : in the Aranyakas, the philosophical axperiencial conclusions,drawn by the forest dweller practioners of the fourfold knowledge stated above, and in the Mahavakayas (the universal statements), experienced, expressed and stated in the Upanisadic part of the Vedic tradition. Let it be pointed out that the Vedic tradition. The Vedic Truth is called Sruti,the

revealed Truth. This Truth, attained by the practice and experience of the Ultimate Reality, the groundless Ground of everything that exists, lives and has its being, is again four dimensional. This ancient-most ethico metaphysical philosophy has the following four divisions :-

1] The Mantras or hymns ;

2] The Brahmanas or the explanatory notes ;

3] The Aranyakas or the books written by the forest dwellers.

4] The Upanisads or the philosophical conclusions.

The Mantras or hymns are the oldest aspect of the Vedic literature and have been classified into the four major collections stated above :

i) Rig

ii) Sama

iii) Yajur

iv) Atharva Samghitas.

These Samghitas cover a very wide field, ranging from the social problems of marriage, love and gambling to metaphysical theories of creation. But most of the hymns are addressed to gods who, on a

close examination, turn out to be the names of the various entities or powers of one Supreme God. This Supreme Ruler of the universe, again, is not a person but a central Reality, the Master of the creation that resides in the very core of everything that exists. According to Plotinus as well, gods are the entities arising from light and light is equivalent to Brahman.

The Brahmanic literature explains the various rituals and analyses the various terms used in the hymns. But unfortunately, this literature has been neglected, not only by the Western, but Indian scholars as well. In fact Brahmanas are a link between the hymns and the Upanisadic philosophy. In the absence of a systematic study of the Brahmanas, the apparent conflict between the ritualistic philosophy of the Vedas and the Atma Vidya [the science of self] of the Upanisads, which places knowledge above action, can never be overcome.

The four dimensional philosophy of the Vedas and the Upanisads, though chronologically prior to the four dimensional mystic philosophy of Plotinus with the three hypostases of the One, the Nous and World Soul plus the concept of Nature or Matter,

as the emanation from the World Soul, is not only similar to, but almost identical with the latter. Before explaining the mystic experience and its purpose—the union of the individual soul with the One--the Supreme Being--the Supreme Abode of Man and Nature, it seems necessary to allude briefly to the four dimensional basis and background of the metaphysics, ethics, psychology, epistemology and sociology of the Vedic and the Upanisadic philosophy.

The four dimensions of the Vedic tradition, as stated above, prove the identity of the Vedic and the Udanisadic four dimensionality with that of Plotinus. The Vedas, the Upanisads and the Bhagavadgita the three foundational philosophies comprising Indian tradition, agree in accepting the following four-fold nature of the Brahman, the Supreme Being as :--

1] Avyaya Brahman [the Eternal Infinite Ground of all] corresponding to the Plotinus. One and even beyond the One.

2] Aksara Brahman (the Indestructible Cause), corresponding to the Plotinian Nous.

3] The Atmaksara Brahman [the Supreme Self], endowed with the potentiality of creation, preservation and destruction and hence a

Creator, not yet differentiated as subject and object, corresponding to the world Soul of Plotinus and

4) Visvasrit Brahman (The Cosmic Manifestation), the extended material world of universes, super galaxies, and individualities, as an emanation and irradiation of just one spark of the Supreme Self, corresponding to the ensouled matter or Nature of Plotinus.

A word of caution in this context seems to be necessary to distinguish between the Plotinian Hypostases and the four dimensional nature of Brahman, even though both the Plotnion philosophy and Indian thought are firmly rooted in the mystic experience, the sole purpose of which, is the return of the four dimensional Self of man to the four dimensional Supreme Self--the One. The Avyaya Brahman is not to be confused even with the One and Unity, since It is also beyond One. Even Plotinus agrees with this transcendence of the One in his writings. Thus the One of Plotinus can be regarded closer to the Avyaya Brahman, even though it is not wholly identical with it. The Avyaya Brahman is also designated as the Paratpar Brahman [the Brahman beyond the beyond]. Aksara Brahman is the absolute and Indestructible--the unmanifested